THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178785
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 / Z 98 V   Accession No. G.H. 2804

Author ज्विग. स्टीफन

Title विशन्ट १९५८

This book should be returned on or before the date last marked below.

विराट

—भारतीय पृष्ठभूमि पर लिखा मार्मिक उपन्यास—

●

लेखक

स्टीफन ज़्विग

अनुवादक

यशपाल जैन

●

१९५८

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली।

दूसरा संस्करण : १९५८
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

सेवा-पथ के व्रतियों

को

जिनका जीवन दूसरों के लिए

समर्पित है ।

अनुवादक की ओर से

सन् '४० की बात है। 'अक्तूबर के मध्य में टीकमगढ पहुंचा तो एक दिन श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक छोटी-सी पुस्तक पढ़ने को दी। किसी विदेशी लेखक का कोई सवा-सौ पृष्ठ का उपन्यास था। पुस्तक और उसके प्रणेता का नाम मेरे लिए कुछ नया-सा था। विशेष उत्साह न होते हुए भी किताब पढ़नी शुरू की। कुछ पन्ने पलटे कि फिर उसे छोडना मुश्किल हो गया और सारी पुस्तक एक सांस में पढ़ गया। उसमें एक नारी की सहज-स्वाभाविक भावनाओं का इतने मार्मिक ढंग से चित्रण किया गया था कि कोई भी पाठक उससे विचलित हुए बिना नहीं रह सकता था। यह कृति थी 'लैटर फ़ॉम एन अननोन वूमेन' (अपरिचित नारी का पत्र)[1] और लेखक थे स्टीफ़न ज़्विग।

ज़्विग से यही मेरा प्रथम परिचय था। उसके बाद तो उनकी जितनी पुस्तकें मिल सकी, पढी और उनकी कला के प्रति मेरे मन में प्रशंसा के भाव उत्तरोत्तर बढ़ते गये। कविता, कहानी, उपन्यास, जीवन-चरित, रेखा-चित्र, नाटक गर्जेकि साहित्य का कोई भी ऐसा अंग नही था, जिसे उन्होने न छुआ हो और जिसमें उन्होंने कमाल न कर दिखाया हो। यहूदी होने के कारण उन्हें अपने जीवन में भारी विपत्तियों का सामना करना पड़ा था। फलत: उन्हे बड़ी गहरी अनुभूतियां प्राप्त हो गई थी, जिनके बिना कोई भी व्यक्ति सफल कलाकार नही हो सकता। ज़्विग की इन अनुभूतियों से उनके सूक्ष्म अन्वेषण, दुखियों के प्रति उनकी सहानुभूति तथा उनके अन्य मानवीय गुणों का परिचय मिलता है और यही अनुभूतिया उनकी रचनाओं में जान डाल देती है।

---

१. यह पुस्तक शीघ्र ही 'सस्ता साहित्य मंडल' से प्रकाशित हो रही है।

हमारे देश के पाठकों के लिए इस उपन्यास का विशेष महत्व है, कारण कि उसकी पृष्ठभूमि भारतीय है। लगभग चालीस वर्ष पूर्व ज़्विग भारत पधारे थे और भारतीय विचार-धारा के प्रति उनकी विशेष रुचि थी। उससे वे प्रभावित भी थे। प्रस्तुत उपन्यास का नाम स्वयं ग्रंथकार का दिया हुआ है। प्रारंभ में उन्होंने गीता के इन श्लोकों का उलथा दिया है:

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

(अध्याय ३, श्लोक ५)

—कोई भी मनुष्य कर्म किये बिना क्षण भर भी नही रह सकता। प्रकृति के गुण प्रत्येक परतत्र मनुष्य को सदा कुछ-न-कुछ कर्म करने में लगाये ही रखते हैं।

किं कर्म किमकर्मति...
यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।

(अध्याय ४, श्लोक १६)

—(इस विषय में बड़े-बड़े विद्वानों को भी भ्रम हो जाता है कि) कौन कर्म है, कौन अकर्म। (अतः वैसा कर्म तुझे बतलाता हूं, जिसके) जान लेने से तू पाप-मुक्त हो जायगा।

इसी सिद्धात पर ज़्विग ने अपने इस 'विराट' उपन्यास को आधारित किया है। यदि कोई व्यक्ति अकर्म की स्थिति प्राप्त करना चाहे तो वह संसार में कदापि संभव नही। कर्म से बचाव हो नही सकता। इसलिए आदमी को चाहिए कि वह बिना फल में आसक्ति रक्खे कर्म करे। विराट अपने जीवन में कर्म से छुटकारा चाहता है। वह सोचता है कि कर्म परिणाम लाता है और उसका प्रभाव दूसरों पर पड़े बिना रह नहीं सकता। पाप-मुक्त होने के लिए आवश्यक है कि आदमी कर्म-मुक्त हो; लेकिन जीवन-भर प्रयत्न करने पर भी विराट कर्म के बंधन से छूट नही पाता। उसके जीवन में कितने ही उतार-चढ़ाव आते हैं, कितने ही कष्ट उसे भोगने पड़ते हैं, पर अत में वह इसी नतीजे पर पहुंचता है कि आदमी बिना फल की अभिलाषा किये अपना काम करता रहे, इसी में उसका कल्याण है। उपन्यास के पात्र, कथानक, विचारधारा, वातावरण सबकुछ भारतीय है। कही भी ऐसा नही लगता कि लेखक विदेशी है। भारतीयता के रंग मे सराबोर होकर ही

कोई कलाकार ऐसे सफल उपन्यास की रचना कर सकता था। 'विराट' ज़्विग की अपूर्व कृति है।

विदेशी लेखकों की बहुत-सी पुस्तकों का अनुवाद भारतीय भाषाओं में हुआ है; लेकिन ज़्विग की बहुत कम रचनाएं अनूदित हुई हैं। जिसकी पुस्तकों के विश्व की लगभग तीन दर्जन भाषाओं में अनुवाद हुए हों, उसकी लोकप्रियता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। हमें विश्वास है कि ज़्विग की रचनाओं के अनुवाद शीघ्र ही भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होंगे। हम चाहते हैं कि उनके आत्म-चरित 'दी वर्ल्ड ऑव यस्टरडे' (कल की दुनिया) का अनुवाद तो जितनी जल्दी प्रकाशित हो सके, अच्छा है।

'विराट' का अनुवाद कराने का श्रेय दादाजी (पं० बनारसीदास चतुर्वेदी) को है। पुस्तक की सुंदर भूमिका भी उन्होंने लिख दी है। इस सबके लिए उनका आभार शब्दों में स्वीकार करना धृष्ठता होगी। अनुवाद में यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिए अनुवादक दोषी है। मूल लेखक के भावो के साथ अन्याय न हो, इस बात की उसे निरंतर चिंता रही है और तदर्थ वह ईमानदारी के साथ सजग भी रहा है।

पाठकों को पुस्तक पसंद आई तो इससे उसे संतोष होगा और हर्ष भी।

७।८, दरियागंज,
दिल्ली।

—**यशपाल जैन**

दूसरा संस्करण

हर्ष है कि पुस्तक का नया संस्करण पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है। यह उपन्यास इतना हृदय-स्पर्शी है कि प्रत्येक भावनाशील पाठक को इसे पढ़ना तथा दूसरों को पढ़वाना चाहिए। भारतीय पृष्ठ-भूमि पर विदेशी लेखक द्वारा लिखी इस प्रकार की रचनाएं हिंदी में कम ही मिलती है। मुझे विश्वास है कि इसे पढने वाले पाठकों का क्षेत्र बढ़ेगा और यह नवीन संस्करण हाथों-हाथ निकल जायगा।

भूमिका

स्टीफन ज़्विग एक असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उनकी प्रथम रचना सन् १९०१ में प्रकाशित हुई थी और अंतिम रचना (बालजक का जीवन-चरित) सन् १९४८ मे छपी। उनका देहात फर्वरी सन् १९४२ में हुआ। जो व्यक्ति निरंतर ४१ वर्ष तक अत्यंत श्रद्धा-पूर्वक सरस्वती की आराधना करता रहा, बड़े-से-बड़े प्रलोभन भी जिसे अपने निर्दिष्ट पथ से अलग न कर सके, जिसने काव्य, कहानी, नाटक, आलोचना, जीवनचरित तथा उन्यास इत्यादि क्षेत्रों में समान रूप से सफलता प्राप्त की, जिसे रोम्यां रोलां और गोर्की जैसे महान् कलाकार अपना समकक्ष मानते रहे, ऐसे अमर साहित्य-सृष्टा की रचनाओं पर एक विहंगम दृष्टि डालना, उनका यथोचित मूल्यांकन करना, किसी विद्वान लेखक का ही काम हो सकता है, जिसने उनके संपूर्ण साहित्य का मूल में अध्ययन किया हो,जो विदेशी साहित्य की विविध धाराओं से सुपरिचित हो और जो स्वयं भी एक उच्चकोटि का कलाकार हो। खेद है कि इन पंक्तियों के लेखक में ऐसी कोई योग्यता नाममात्र को भी नही है। इसलिए वह ज्विग के भक्त की हैसियत से ही दो-चार शब्द लिख सकता है।

यदि हमसे पूछा जाय कि ज्विग की रचनाओं में हमें कौनसी चीज़ पसंद आई तो हमारा यही उत्तर होगा कि उनका साहित्यिक व्यक्तित्व—मनुष्यता, जिसका निरतर विकास उन्होंने अपनी अनंत साधना द्वारा किया था। किसी हिंदी कवि के कथनानुसार प्रेम का अर्थ 'तरवार की धार पै धावनौ है' और ज़्विग की यह विशेषता थी कि वे एक कुशल नट की तरह इकतालीस वर्ष तक अचूक सावधानी और अडिग निश्चय से अपने साहित्यिक योग में

डटे रहे। मनुष्य के गुण-दोष उसकी रचनाओं में चित्रित हो जाते हैं और कुशल पारखी के लिए किसी सृष्टा की रचनाओं में उसकी आत्मा का दर्शन कर लेना कोई मुश्किल बात नही। यद्यपि यह संभव है कि कुछ लेखकों का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं से मेल न खाता हो, वे अपनी रचनाओं से तटस्थ रहे हों अथवा उनका आचरण उनके प्रकाशित विचारों से बिल्कुल विपरीत रहा हो, तथापि वह नामुमकिन है कि कोई कलाकार अपने आपको बिल्कुल ही छिपा सके। कही-न-कही का एक वाक्य अथवा एक शब्द ही उसकी अंतरात्मा के सौंदर्य अथवा कुरूपता को घोषित करने के लिए पर्याप्त होगा, ठीक उसी प्रकार जिस तरह अंगूठे की निशानी या पैर के चिह्न से कोई चोर या खूनी पकड़ा जा सकता है!

गत पच्चीस वर्षो से हम स्टीफन ज़्विग की रचनाओं का विशेष रूप से अध्ययन करते आये हैं। कइयो को हमने अनेक बार पढा है, सुनाया है और अपने साथियों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित भी किया है। ज़्विग का आत्म-चरित 'कल की दुनिया' (The World of Yesterday) हमारा एक प्रिय ग्रंथ है और उनकी प्रथम पत्नी द्वारा लिखे हुए उनके जीवन-चरित (Stefan Zweig by Friderike Zweig) का हमने विधिवत् अध्ययन किया है। इस दीर्घ परिचय के बाद हम यही कह सकते हैं कि ज़्विग अपनी रचनाओं मे पूर्णरूप से तथा ईमानदारी के साथ विद्यमान हैं और अपनी रचना के साथ तादात्म्य ही उनकी सबसे बडी सफलता है।

ज़्विग की रचनाओ मे 'विराट' हमे बहुत पसंद आया है, केवल इसी कारण नही कि उसकी पृष्ठभूमि भारतीय है, बल्कि इस वजह से भी कि इसमें उन्होने अपनी ही आत्मा को चित्रित कर दिया है।

हमें उस दिन की याद कभी न भूलेगी जब हमने 'विराट' को पहली बार पढ़ा था। प्रारम्भ से अंत तक हम मत्र-मुग्ध से बने रहे और पुस्तक समाप्त होने पर हमारे मुँह से सहसा यही शब्द निकल पड़े—"यह तो एक सुदर काव्य है।" तत्पश्चात् हमने इतनी बार इस कथा को अपने मित्रो तथा साथियो को पढ-पढकर सुनाया कि वह हमें कंठस्थ-सी हो गई। हम इस लघु उपन्यास का अनुवाद स्वय ही करना चाहते थे, पर अपनी दीर्घ-सूत्रता के कारण ऐसा न कर सके! सौभाग्य की बात है कि इस शुभ

कार्य को हमारे सुयोग्य सहायक और सहृदय बंधु श्रीयुत यशपालजी ने बड़ी सफलता-पूर्वक कर दिया है और इसके लिए हम उनके अत्यंत कृतज्ञ हैं।

'विराट' के विषय में ज़्विग की सुयोग्य पत्नी ने, जो स्वयं बड़ी अच्छी लेखिका है, लिखा है, "विराट के चरित्र में और स्टीफन ज़्विग के चरित्र में एक प्रकार का भ्रातृत्व तथा ऐक्य विद्यमान है।" मानो इस उपाख्यान के बहाने उन्होंने अपनी अंतरात्मा को ही प्रतिबिंबित कर दिया है—बकौल किसी उर्दू कवि 'कागज पै रख दिया है कलेजा निकालकर।'

श्रीमती ज़्विग 'विराट' के विषय में आगे लिखती हैं—

"कोई मनुष्य जब किसी पर चोट करता है अथवा उसके जुर्म के विषय में फैसला देता है तो उसे अपने अंधेपन में यह प्रतीत नही होता कि चोट किस पर पड़ रही है और किसका भाग्य-निर्णय वह कर रहा है, इसलिए उसे इस काम को तिलाजलि ही दे देनी चाहिए। ज़्विग की रचनाओं में निरंतर इसी राग की ध्वनि सुनाई पड़ती है।"

'विराट' के कुछ वाक्य तो इतने बढ़िया बन पड़े हे कि उन्हें सदूक्तियों के संग्रह में स्थान मिलना चाहिए, यथा :

"संतों के एकांतवास की अपेक्षा कही अधिक सचाई दुख की एक सिसकी में है।" (पृष्ठ ९८)

"जो शासन करता है, वह दूसरों की स्वतंत्रता का तो अपहरण करता ही है, लेकिन सबसे बुरी बात तो यह है कि वह स्वयं अपनी आत्मा को गुलाम बनाता है।" (पृष्ठ ८३)

"मैं किसी का भाग्य-विधाता नहीं बनूगा। जो भी कोई दूसरे के भाग्य का फैसला करता है वह अपराधी है।" (पृष्ठ ८१)

"यह हो सकता है कि आदमी की निगाह में एक सेवा दूसरी से बड़ी दिखाई दे, लेकिन परमात्मा की निगाह में सब सेवाएं समान हैं।" (पृष्ठ १०३)

"मुझे जो सीख मिली है वह अभागों से मिली है। मुझे जो कुछ दीखा है, उसका दर्शन दुखियों की निगाह ने कराया है।" (पृष्ठ ९८)

"जिसका कोई घर-बार नही, उसी की सारी दुनिया घर है। जिसने

जीवन के बंधनों को काट डाला है, उसी के हिस्से में सच्चा जीवन आया है।" (पृष्ठ ८६)

"कोई भी किसीके बारे में निर्णय देने का अधिकारी नही है।... दंड देना परमात्मा के हाथ की बात है, मनुष्य के हाथ की नहीं।" (पृष्ठ ७०)

ज़्विग के लिए ये वाक्य कोरमकोर सिद्धांत ही नहीं थे, वे व्यवहार में भी उनका प्रयोग करते थे। एक बार एक चोर पेरिस में होटल से उनका संदूक उठा ले गया। वह पकड़ा गया। ज़्विग को भी कचहरी में जाना पड़ा। जब पुलिस अफसर ने पूछा, "आप इस चोर के खिलाफ मुकदमा दायर करेंगे?" तो आपने तुरत उत्तर दिया, "हर्गिज़ नही।" परिणाम क्या हुआ, उसे ज़्विग के ही शब्दों में सुन लीजिये :

"ज्योंही मैने कहा 'हर्गिज़ नही' त्योंही उसकी प्रतिक्रिया तीन व्यक्तियों पर तीन तरह से हुई। चोर के (जो बेचारा दो पुलिसमैनों के हाथ में भौंचक्का-सा खड़ा हुआ था) चहरे पर कृतज्ञता का जो भाव उदित हुआ वह अवर्णनीय है और उसे मैं ज़िंदगी भर नही भूल सकता। पुलिस अफसर ने संतोष-पूर्वक अपनी कलम रखदी। उसने सोचा कि चलो, मामला योंही निपट गया, अब व्यर्थ ही पन्ने न रंगने पड़ेंगे। लेकिन मेरे मकान-मालिक का तो चेहरा ही पीला पड़ गया। वह मुझ पर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा, "यह तुम कर क्या रहे हो? इन धूर्तों का तो खात्मा ही कर देना चाहिए। तुम नही जानते कि इन जूओं के मारे सैकड़ों भले आदमियों की नीद हराम होती है। इस तरह एक चोर को छोड़ देने से तो जनाब, सैकड़ों चोरों को प्रोत्साहन मिलेगा। आप अपनी 'माफी' को वापस लीजिये।" इत्यादि-इत्यादि।"

ज़्विग ने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया, "मेरी चीज़ मुझे वापस मिल गई। मै इस पर मुकदमा कदापि नही चलाऊंगा।"

ज़्विग लिखते है, "मैंने अपनी ज़िंदगी में कभी किसी पर अभियोग नहीं लगाया था और इस खयाल से कि आज मेरी वजह से किसी को मजबूरन जेल का खाना नहीं खाना पड़ेगा, मैं और भी स्वाद से अपना भोजन करूंगा।"

ज्योंही ज़्विग ने अपना संदूक लेने के लिए हाथ बढ़ाया कि वह चोर

आगे बढ़कर विनम्रता-पूर्वक बोला, "अरे, नहीं जनाब, यह हो नही सकता। मैं खुद इसे आपके घर तक ले चलूगा।" ज़्विग लिखते हैं, "इस प्रकार मैं सड़क पर आगे-आगे चल रहा था और वह कृतज्ञ चोर उस भारी बोझ को लादे हुए मेरे होटल तक पीछे-पीछे।"

मनोभावनाओं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण में ज़्विग का मुक़ाबला करने वाले लेखक बिरले ही होगे। इतिहास की सूखी हड्डियों में जान डाल देना तो उनके बांए हाथ का खेल था। उनमें एक अद्भुत मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि थी। उनकी पुस्तक 'मेरी एंटोइनिटी' पर एक प्रसिद्ध फिल्म बनी थी। उक्त फिल्म की आलोचना करते हुए फरवरी सन् १९३९ की 'क्विवर' नामक पत्रिका में एक आलोचक ने लिखा था—

"आप इस फिल्म को जरूर देखें, पर साथ ही मैं इतना और भी कहूंगा कि आप स्टीफन ज्विग की किताब को भी पढ़ें और बार-बार पढ़ें और तब यह बात आपको स्पष्ट हो जायगी कि ग्रंथकार अपने पाठ-भवन में बैठकर धैर्य-पूर्वक और ईमानदारी के साथ जैसा सजीव चित्र बना सकता है वैसा बढ़िया चित्र हॉलीवुड के या दुनिया के तमाम अभिनेता और अभिनेत्रियां हज़ारों पौड खर्च करके भी नही बना सकते।"

'ट्रासफिगरेशन' (रूप-परिवर्तन) ज़्विग की एक अत्युत्तम कहानी है, जो कला की दृष्टि से संभवतः 'विराट' से भी बढ़कर होगी। उसके कुछ वाक्य सुन लीजिये :

"दानशीलता के आनंद ने—दोनों हाथों से अपनी संपत्ति को लुटाकर प्रफुल्लित होने की भावना ने—समस्त विश्व से मेरा रिश्ता जोड़ दिया था और तब मैंने सोचा, आनंद देना और आनंद लेना कितना आसान है ! उन लोहे के तख्तों को ऊपर उठा देना भर काफ़ी है, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच में बाधा के रूप मे विद्यमान हैं और उन तख्तों के उठते ही जीवन की धारा मनुष्य से मनुष्य की ओर प्रवाहित होना प्रारंभ हो जाती है। ऊपर से तुमुल-ध्वनि करती हुई वह नीचे की ओर गिरती है और फिर नीचे से उसकी फुहार उठकर अनंत की ओर जाने लगती है।"

"चांदी के कुछ सिक्को से अथवा रंगीन कागज़ के कुछ टुकड़ों (नोटों) से दूसरों की चिंताओं को खत्म कर देना और आनंद को वितरित करना

कितना सरल है।"

"जीवन को वही समझता है, जो प्रेम करता है और जो दान करता है।"

ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त वाक्य ज़्विग के जीवन के मोटो (आदर्श वाक्य) थे और तदनुसार उन्होंने अपने व्यक्तितत्व का निर्माण भी किया था।

नवयुवक लेखकों को प्रोत्साहित करना—छुटभइयों का मार्ग-प्रदर्शक बनना—ज़्विग के जीवन का मुख्य कार्य था और एतदर्थ उन्होंने अपना बहुत-कुछ समय, शक्ति तथा धन भी व्यय किया था।

उनके एक मित्र वरफेल ने लिखा था, "ज़्विग की तरह उदारतापूर्वक तथा मुक्तहस्त से अपने मित्रों की सहायता करने वाला दूसरा कोई लेखक विद्यमान नहीं।"

स्वर्गीय साहित्य-सेवियों को श्रद्धांजलि अर्पित करना अथवा साहित्यिक अग्रजों का गुणगान करना तो मानों ज़्विग के हिस्से में ही आया था। उनके लिखे हुए महत्त्व-पूर्ण जीवन-चरित इस बात के प्रमाण हैं। रोम्यां रोलां की सर्वोतम जीवनी उन्हीं के द्वारा लिखी गई थी और टालस्टाय के चरित्र का विश्लेषण उन्होंने बड़ी खूबी के साथ किया है। सुप्रसिद्ध फरांसीसी लेखक बालजक के जीवन-चरित में उन्होंने आठ वर्ष लगा दिये थे।

क्या निजी और क्या राष्ट्रीय, क्या साहित्यिक अथवा क्या अंतर्राष्ट्रीय सभी व्यवहारों में ज़्विग एक मनुष्य थे और मनुष्यता की रक्षा करना, मानवता को पाशविकता के आक्रमण से वचाना—यही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। अपने अंतिम पत्र में उन्होंने लिखा था, "मुझे बौद्धिक परिश्रम से ही सबसे अधिक आनंद मिला है और मैंने व्यक्तिगत स्वाधीनता को ही संसार की सर्वोत्तम वस्तु समझा है।"

उनके बौद्धिक परिश्रम की कल्पना इसीसे की जा सकती है कि उन्होंने अपने जीवन में दो लाख पृष्ठ लिखे थे और अपनी रचनाओं को संक्षिप्त करने तथा उनमें प्रवाह लाने की धुन में उन्होंने कम-से-कम आठ लाख पृष्ठ लिखकर फाड़ फेंके थे और व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा के लिए उन्होंने क्या-क्या कष्ट नहीं सहे? अधिक क्या कहा जाय, उसी की रक्षा के

लिए उन्होंने अपने प्राण तक दे दिये ! उन्होंने कभी किसी की गुलामी नहीं की । आस्ट्रियन सरकार उन्हें अपना राजदूत बनाकर विदेश भेजना चाहती थी, पर उन्होंने उस गौरव को तुच्छ ही समझा ।

मनुष्य-मात्र में त्रुटियां पाई जाती हैं । ज़्विग में भी वे अवश्यमेव रही होंगी । वे देवता नहीं थे और न किसी को देवत्व प्रदान करना उन्हें प्रिय था ।

"देवत्व प्रदान करना नहीं, बल्कि मानवी रूप में दिखलाना ही मनोवैज्ञानिक सृष्टा का सर्वोच्च कार्य है ।"

ज़्विग का यह वाक्य प्रत्येक चरित-लेखक के लिए आदर्श है ।

जो गुण ज़्विग की रचनाओं को विशेषता प्रदान करते हैं उनमें मुख्य है उनकी मनुष्यता और तत्पश्चात् उनकी अनुभूतियों की विविधता । जब उन्हें पिछले युद्ध में इंग्लैंड छोडकर आस्ट्रिया लौटना पड़ा था, उस समय का वर्णन करते हुए वे आत्म-चरित के अंत में लिखते हैं—

"सूर्य पूर्णता तथा उज्ज्वलता के साथ अपनी किरणे फैला रहा था । घर को लौटते हुए मुझे स्वयं अपनी छाया सामने दीख पड़ी, ठीक उसी प्रकार जिस तरह सन् १६१४ के महायुद्ध की छाया मुझे इस नवीन युद्ध में दीख रही थी । इन तमाम वर्षों में यह अनिवार्य छाया मुझसे दूर नही हुई । मेरे दिन-रात के विचारों के चारों ओर वह चक्कर काटती रही है और संभवत: उसकी अंधकारमय रेखा इस पुस्तक के पृष्ठों पर भी दृष्टिगोचर होगी । लेकिन आखिर छाया भी तो प्रकाश से ही उत्पन्न होती है । जिस व्यक्ति ने उषा और अंधकार, युद्ध तथा शांति, उतार एवं चढ़ाव सभी का अनुभव किया है, केवल उसी के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह दरअसल जीवित रहा है ।"

अपनी इस परिभाषा के अनुसार स्टीफन ज़्विग ने जीवन को समझा था और खूब समझा था । मानवीय कमजोरियों या त्रुटियो को नहीं, उसकी रचनात्मक शक्ति को ही वे महत्त्व देते थे । वे कहते थे :

"वही वास्तव में सच्ची जिंदगी व्यतीत करता है, जो अपनी जीवन-शक्ति को भावी संतान के लिए व्यय कर देता है और जो उसे भविष्य को अर्पित कर देता है ।"

स्टीफन ज़्विग अपनी रचनाओं में विद्यमान हैं। 'विराट' में पाठक उन्हीं के सात्विक तथा उज्ज्वल रूप का प्रतिबिम्ब देखेंगे—आकर्षक तथा मनोहर, विनम्र और प्रभावशाली।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते' के संदेश को इस खूबी के साथ उपस्थित कर देने वाले उस अमर कलाकार की सेवा में हमारा सहस्र बार प्रणाम !

—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

स्टीफ़न ज़्विग : एक रेखाचित्र

नंवबर, १९३१। सल्ज़बर्ग (ग्रास्ट्रिया) का एक बुड्ढा पोस्टमेन हांफता हुग्रा, चिट्ठियों, तारों, ग्रखबारों ग्रौर किताबों के पुलिंदे से लदा हुग्रा, एक साहब की कोठी की सीढ़ियां चढ़ रहा था। वैसे तो उनकी रोज़ की डाक हो काफी भारी होती थी, पर ग्राज तो उसने मानो कमर ही तोड़ दी ! बात यह हुई थी ग्राज कि एक ग्रास्ट्रियन लेखक की पचासवीं वर्ष-गांठ थी। वह जर्मन भाषा के एक महान् ग्रथकार थे ग्रौर जर्मनी के समाचार-पत्र ग्रपने कलाकारों की रजत-जयंती बड़ी शान के साथ मनाया करते थे। इसी कारण ग्राज की डाक बहुत भारी हो गई थी।

इसल वरलैग नामक प्रकाशन-संस्था ने लेखक की सब किताबों की तथा भिन्न-भिन्न भाषाग्रों में उनके जो ग्रनुवाद हुए थे, उनकी सूची पुस्तकाकार प्रकाशित करके भेंट-स्वरूप भेज दी थी। उस सूची में संसार की प्राय: मुख्य-मुख्य भाषाएं ग्रागई थी, यहांतक कि ग्रधों के लिए भी उनकी किताबें ब्रेली-पद्धति में लिख दी गई थीं ! पाठकों को यह बतलाने की ग्राव-श्तकता नहीं कि जगत् के इस ग्रत्यंत लोकप्रिय लेखक का नाम था स्टीफ़न ज़्विग। जिन भाषाग्रों में उनके ग्रंथों के ग्रनुवाद हो चुके हैं, उनके नाम सुन लीजिये——

१. ग्रार्मीनियन	२. फ़रांसीसी	३. नार्वेजियन
४. बलगेरियन	५. जार्जियन	६. पोलिश
७. कैटेलन	८. यूनानी	९. पोर्चुगीज़

१०. चीनी	११. हेब्रू	१२. रुमानियन
१३. कोशियन	१४. हंगेरियन	१५. रशियन
१६. ज़ेक	१७. इटैलियन	१८. सर्बियन
१९. डैनिश	२० जापानी	२१ स्पेनिश
२२. डच	२३. लैटिश	२४. स्वीडिश
२५. अंग्रेजी	२६. लिथूनियन	२७. यूक्रेनियन
२८. फ़िनिश	२९. मराठी	३०.यिड्डिश

एक बार 'लीग ऑव नेशंस' (राष्ट्र-संघ) की 'अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग' नामक संस्था ने जांच करके अपनी रिपोर्ट में लिखा था—"इस समय संसार में सबसे अधिक अनुवादित ग्रंथकार स्टीफ़न ज़्विग हैं।"

स्टीफ़न ज़्विग का जन्म सन् १८८१ में वियना में हुआ था। उनके पिता मोराविया के यहूदी थे और वह बड़े चतुर व्यापारी थे। अपने कौशल के कारण वह अपने पचासवें वर्ष में करोड़-पति बन गये थे। ज़्विग की माता इटली के अनकोना नामक स्थान में पैदा हुई थीं और इटैलियन तथा जर्मन दोनों भाषाओं को बखूबी बोल सकती थीं। ज़्विग के नाना के कुटुंबी स्वीज़र-लैंड की सीमा के निकट रहते थे और वहां से वे भिन्न-भिन्न देशों को चले गये थे। कोई फ्रांस गये, कोई इटली तो कोई अमरीका। इस प्रकार उस परिवार के बच्चे जन्म से ही कई भाषाएं बोल सकते थे। अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को विकसित करना उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक था।

वियना नगरी अपने साहित्यिक तथा सांस्कृतिक वातावरण के लिए यूरोपभर में प्रसिद्ध थी। वह दो हजार वर्ष पुरानी थी

ग्रौर कम-से-कम एक हज़ार वर्ष से तो उसकी सांस्कृतिक परंपरा बिना किसी बाधा के उत्तरोत्तर बढ़ती चली ग्रा रही थी ।

उदाहरण के लिए वहां की कॉफ़ी की दूकानें लीजिये । ग्राने-दोग्राने देने पर वहां कोई भी व्यक्ति चाय या कॉफ़ी पी सकता था ग्रौर साथ में वियना के ही नहीं, जर्मनी, फ्रांस, इटली ग्रौर ग्रमरीका तक के ख़ास-ख़ास बीसियों ग्रख़बार तथा पत्र भी पढ़ सकता था । इन दुकानों पर साहित्यिक लोग ग्रनेक विषयों पर वार्तालाप तथा वाद-विवाद किया करते थे । लिखने के लिए वहां कागज़-कलम का प्रबंध था ग्रौर वे ग्रपनी डाक भी वहां निपटा सकते थे । कभी-कभी वे ताश भी खेलते थे । दरग्रसल इन दूकानों ने सार्वजनिक क्लब का रूप धारण कर लिया था । ग्रॉस्ट्रिया के सांस्कृतिक धरातल को ऊंचा करने ग्रौर वहां के निवासियों के दृष्टिकोण को ग्रंतर्राष्ट्रीय बनाने में चाय-कॉफ़ी की इन दूकानों का ज़बरदस्त हाथ था ।

प्रारंभिक पाठशाला में पढ़ने के बाद ज़्विग को जिनेशियम नामक विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा गया । वहां की नीरस पढ़ाई के बोझ का मनोरंजक ब्यौरा ज़्विग के ग्रात्मचरित में मिलता है । जीवित भाषाग्रों में फ्रेंच, ग्रंग्रेजी तथा इटैलियन तो पढ़ाई ही जाती थीं, पर उनके साथ-साथ ग्रीक तथा लैटिन का भी ग्रध्ययन करना ग्रावश्यक था । मातृभाषा जर्मन ग्रलग—रेखागणित ग्रौर विज्ञान इनके ग्रलावा । ज़्विग ने इस शुष्क जीवन का जो करुणोत्पादक चित्र खींचा है, वह भारतीय विद्यालयों की वर्तमान शिक्षण-पद्धति से मिलता-जुलता है ।

यूरोप में तो परिस्थिति बहुत-कुछ बदल चुकी है। शिक्षा अब वहां भार-स्वरूप नहीं रही, विद्यार्थी समानता के धरातल पर अध्यापकों से बातचीत करते हैं और उनकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं तथा रुचियों का भी खयाल रखा जाता है, पर हमारे मुल्क मे तो 'वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी है।'

उपर्युक्त कृत्रिम वातावरण के होते हुए भी यदि स्टीफ़न ज़्विग ने अपनी प्रतिभा का विकास कर लिया तो उसका श्रेय उनके क्लास के विद्यार्थियों की स्पर्धा की भावना को मिलना चाहिए। एक तो उन दिनों वियना में नाटक, साहित्य तथा कला के लिए वैसे ही काफ़ी उत्साह था। समाचार-पत्र ख़ासतौर पर इन विषयों पर लिखा करते थे, नगर की किसी भी साहित्यिक या सांस्कृतिक घटना को वे उपेक्षा की दृष्टि से न देखते थे और फिर जिस कक्षा में स्टीफ़न ज़्विग भर्ती हुए थे, वह विशेष रूप से कला-प्रेमी और साहित्यानुरागी थी। क्लास में पढ़ाया कुछ जाता था और छात्र छिप-छिपकर पढ़ते कुछ और ही थे ! लैटिन के व्याकरण के पृष्ठों के पीछे कविताओं के पन्ने जोड़ दिये जाते थे और गणित की कापियों पर सुदर-से-सुंदर काव्यों की नकल कर दी जाती थी। शिक्षक लोग शिलर की कविताओं पर लेक्चर देते थे और विद्यार्थी लोग डैस्क में छिपा-छिपाकर नीत्शे के ग्रंथ पढ़ते थे ! छात्रों में यह प्रतियोगिता रहती थी कि हमारा ज्ञान अद्यतन (अपटूडेट) रहे। वे पुस्तक-विक्रेताओं की दूकानें छान डालते थे, नवीन किताबों की प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठा से करते थे, पुस्तकालयों से ग्रंथ लाते थे और जो कोई विद्यार्थी नई बात का पता लगा लेता तो वह दूसरे संगी-

साथियों को उसे बतलाने में गौरव अनुभव करता था। उन लोगों में होड़-सी लगी रहती थी कि कौन पहले किसी नवीन चीज़ का पता लगा ले। इसके सिवा विद्यार्थियों की प्रतिभा के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव डाला वियना की चाय-कॉफ़ी की दूकानों ने, जिनका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं। सत्रह वर्ष की उम्र में स्टीफ़न ज़्विग ने जिस लगन के साथ साहित्य का अध्ययन किया था, वह लगन अपने जीवन के उत्तर भाग में वह कदापि प्रदर्शित नहीं कर सके। वाल्ट ह्विटमैन तथा अन्य कवियों की बीसियों कविताएं उन्हें कण्ठस्थ थीं। आगे चलकर स्टीफ़न ज़्विग को साहित्य-जगत् में जो विश्वव्यापी कीर्ति मिली उसकी नींव विद्यार्थी-जीवन में ही पड़ चुकी थी। उन्होंने लिखा है—

"विद्यार्थी-जीवन की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जिज्ञासा ने मेरे रक्त में प्रवेश कर लिया था—बौद्धिक प्रेरणा मेरी नस-नस में व्याप्त होगई थी और आगे चलकर जो कुछ मैंने पढ़ा और सीखा, उसका दृढ़ आधार उन्हीं वर्षों का अध्ययन है। यदि बाल्यावस्था में किसी आदमी का शरीर निर्बल रह जाय तो बड़ी उम्र में वह उसकी क्षति-पूर्ति कर सकता है, पर यदि कोई अपने में विश्वात्मा का अनुभव करना चाहता हो तो उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह यौवनावस्था में ही आत्मा की ग्रहणशक्ति को विकसित कर ले।"

जब स्टीफ़न ज़्विग केवल उन्नीस वर्ष के थे, जर्मन-काव्य-ग्रंथों के एक सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक ने उनकी कविताओं का एक संग्रह छापने के लिए स्वीकृत कर लिया। उस समय उस

नवयुवक कवि को जो हर्ष हुआ, उसका बड़ा आकर्षक वर्णन उन्होंने किया है। उस ग्रंथ की मुख्य-मुख्य समाचार-पत्रों तथा प्रतिष्ठित कवियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी और जर्मनी के एक सर्वोत्तम गायनाचार्य ने उनकी छः कविताओं को स्वर-लिपियों में बद्ध कर दिया था।

पर स्टीफ़न ज़्विग अपनी रचनाओं के विषय में अत्यंत सावधान और काफी कठोर रहे। उस काव्य-ग्रंथ की एक भी कविता उन्होंने अपने संग्रह में शामिल नहीं की! उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का सिद्धांत बना लिया था कि कोई भी अधपकी चीज़ उनके हाथ से न निकलने पावे। इसी कारण उन्होंने अपने प्रारंभिक जीवन की कितनी ही पुस्तकें दुबारा नहीं छपने दीं! १६०१ में उनकी प्रथम पुस्तक छपी थी और सितंबर सन् १६४२ में, अपने आत्मघात के पहले, उन्होंने अपनी अंतिम पुस्तक प्रकाशक को भेज दी थी। इस बयालीस वर्षीय अखण्ड साहित्यिक तपस्या का दृष्टांत विश्व-साहित्य में मुश्किल से ही मिलेगा।

हम पहले बतला चुके हैं कि संसार की तीस भाषाओं में ज़्विग की पुस्तकों का अनुवाद हो चुका है। जर्मनी, फ्रांस और इटली में वह समान रूप से लोकप्रिय थे। उनके ग्रंथ लाखों की संख्या में छपकर जर्मनी में घर-घर फैल गये थे। इटली में मुसोलिनी उनकी रचनाओं के प्रशंसकों में अग्रगण्य थे और रूस में मैक्सिम गोर्की ने उनके ग्रंथों के रूसी अनुवाद की भूमिका लिखी थी। अंग्रेजी में उनके सत्रह से अधिक ग्रंथों का अनुवाद हो चुका है। उनकी किसी-किसी किताब की पचास-पचास हज़ार प्रतियां

एक वर्ष में बिक गईं ! उनकी कितनी ही पुस्तकों के आधार पर नाटक बनाये गये, कितनी ही पर फिल्में बनाई गईं और बाज़-बाज़ पुस्तक ढाई लाख छपी। फिर संसार का सबसे अधिक अनुवादित ग्रंथकार होना क्या कम गौरव की बात है ?

ज़्विग ने बड़ी विनम्रता के साथ अपनी इस सफलता का रहस्य आत्म चरित में बतलाया है। वह लिखते हैं—

"मुझमें एक बड़ी भारी कमजोरी है, वह यह कि किसी भी अनावश्यक वाक्य या प्रसंग को पढ़कर मुझे बड़ी झुंझलाहट होती है, किसी भी अस्पष्ट बात से मेरा धैर्य छूट जाता है और कोई भी चीज़, जो पुस्तक के प्रवाह में बाधा डाले, मेरेलिए असह्य हो उठती है। बस मेरी यह स्वभावगत कमजोरी ही मेरी सफलता का मूल कारण है।"

ज़्विग के लिखने का तरीका यह था कि पहले तो वह जितना भी मसाला किसी विषय पर मिल सकता, इकट्ठा करते थे और उसके लिए वह कोना-कोना छान डालते थे—क्या मजाल कि कोई चीज़ उनकी तेज निगाह से छूट जाय—और फिर प्रथम पाण्डुलिपि तैयार कर लेते थे। तब उनका वास्तविक कार्य प्रारंभ होता था। अगर पहली कापी एक हजार पृष्ठ की होती तो अंतिम में सिर्फ दोसौ ही पृष्ठ बाकी रह जाते थे ! शेष आठसौ को रद्दी की टोकरी में फेंक देना कोई आसान काम न था, पर इसमें उन्हें अलौकिक आनंद मिलता था।

एक बार ज़्विग महोदय बड़े प्रसन्न दीख पड़ रहे थे। उनकी पत्नी ने उनसे कहा, "मालूम होता है कि आज आपने अपनी किसी रचना की काफ़ी काट-छांट कर डाली है !"

ज़्विग ने बड़े अभिमान के साथ उत्तर दिया, "हां, मैंने एक पैराग्राफ को साफ उड़ा दिया और घटना-प्रवाह में और भी गति ला दी।"

'काता और ले दौड़े' की नीति के अनुयायी इससे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

ज़्विग लिखते हैं--

"मैंने तमाम बाहरी सम्मानों को अस्वीकार ही किया है। कभी किसी पद या प्रतिष्ठा अथवा उपाधि इत्यादि को ग्रहण नहीं किया। न किसी सभा का प्रधान बना और न किसी सोसाइटी या कमेटी अथवा परिषद् से अपना संबंध रखा। भोजों में शामिल होना मेरेलिए अत्यंत कष्टप्रद रहा है और किसी-से कुछ मांगने से पहले ही—चाहे वह प्रार्थना परोपकारार्थ ही क्यों न हो—मेरी ज़बान सूख जाती है। मैं जानता हूं कि आज की दुनिया में इस प्रकार के ख्यालात दकियानूसी ही माने जावेंगे। पद और उपाधि इत्यादि से एक फायदा तो होता ही है, वह यह कि आदमी धक्कम-धक्के से बच जाता है। पर मेरे मन में एक आंतरिक अभिमान है, जिसे मैंने अपने पिताजी से पैतृक संपत्ति के रूप में पाया है और इसी अभिमान के कारण मैं इन तमाम उपाधिरूपी व्याधियों से बचा रहा हूं।"

ज़्विग के पिताजी करोड़पति थे और अव्वल नंबर के स्वाभिमानी। वह किसीका भी अहसान अपने ऊपर नहीं लेना चाहते थे। उनके लिए मान-सम्मान प्राप्त करना बहुत आसान था, पर आत्माभिमानवश वह उनसे दूर ही भागते रहे। ज़्विग ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। जिस प्रकार कोई नट बांस

के संतुलन के द्वारा रस्सी पर चला जाता है और इधर-उधर नहीं झांकता, उसी प्रकार ज़्विग ने माता सरस्वती की आराधना में कभी कोई आघात नहीं आने दिया। 'समत्वं योगमुच्यते' योग की इस परिभाषा के अनुसार ज़्विग सचमुच साहित्य-योगी थे।

ज़्विग ने अपने जीवन-चरित में नवयुवक लेखकों को एक बड़े पते की बात बतलाई है। वह लिखते हैं—

"यदि कोई नवयुवक लेखक अपने लक्ष्य के विषय में अनिश्चित हो तो उसे मैं एक ही परामर्श दूंगा, वह यह कि वह किसी महान् लेखक की छोटी-मोटी पुस्तक का अनुवाद करे या फिर उसके आधार पर कोई ग्रंथ लिख दे। नवीन लेखक जो भी सेवा आत्म-त्याग की भावना से करेगा, उसमें उसे अपनी कृति की अपेक्षा सफलता मिलने की विशेष संभावना रहेगी; क्योंकि भक्तिपूर्वक किया हुआ कोई भी कार्य कदापि निष्फल नहीं होता।"

ज़्विग का यह अनुभूत प्रयोग था और यह हृदयंगम करने की चीज है। वरहेरन नामक फरांसीसी कवि की रचनाओं के अनुवाद में उन्होंने दो-ढाई वर्ष लगा दिये थे और इस प्रकार अपनी स्थायी कीर्ति की नींव रखी थी। अनुवाद इतना बढ़िया हुआ था कि खुद फ्रेंच भाषा की अपेक्षा जर्मन भाषा में वरहेरन का नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया!

महाकवि चकबस्त ने कहा था—दीन क्या है, किसी कामिल की इबादत करना, अर्थात् योग्यों की पूजा ही वास्तविक धर्म है। ज़्विग की रचनाओं को देखकर यह निश्चय हो जाता है कि

उन्होंने भी योग्यों की पूजा को ही अपना साहित्यिक धर्म मान लिया था। यद्यपि ज़्विग अच्छे कवि थे, बहुत बढ़िया नाटककार और यूरोप में उनके मुकाबले के आलोचक बहुत ही कम पाये जाते थे, तथापि उनकी कीर्ति मुख्यतया उनके लिखे जीवन-चरितों से ही चिरस्थायी रहेगी। उनका लिखा रोम्यां रोलां का जीवन-चरित एक आदर्श ग्रंथ माना जायगा। इसके सिवा बालजक, डिकिंस, स्टेण्डहल, फाउचे, ऐरेसमस, मेरी स्टुआर्ट, मेरी ऐण्टोइनेटी और फ्रायड इत्यादि पर लिखे हुए उनके विस्तृत निबंध, ग्रंथ अथवा रेखाचित्र उनकी चरित्र-चित्रण की असाधारण योग्यता को प्रकट करते हैं। सूखी हड्डियों में जान डाल देना ज़्विग के लिए मानों बांए हाथ का खेल था। चरित-नायकों या चरित-नायकाओं की अंतरात्मा में प्रवेश करके उनकी जीती-जागती मूर्ति पाठकों के सम्मुख खड़ी कर देने की कला में वह अद्वितीय थे।

किसी प्रतिभाशाली लेखक के प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने पर तो उसके सहस्रों प्रशंसक मिल जाते हैं। ज़्विग की दूरदर्शिता की तारीफ करनी चाहिए कि वह छिपे हुए हीरों को प्रकाश में लाया करते थे। उनका परिचय रोम्यां रोलां से जिस प्रकार हुआ, उसकी कथा बड़ी मनोरंजक है। ज़्विग महोदय एक बार किसी रूसी महिला के यहां निमंत्रित किये गये। वह स्थापत्य-कला में विशेषज्ञ थीं और मूर्त्तियां बनाया करती थीं। ज़्विग महोदय ठीक वक्त पर उनके यहां पहुंचे, पर श्रीमतीजी ग़ैरहाजिर थीं—रूसी लोग भी शायद हम भारतीयों की तरह ही समय के गैरपाबंद होते हैं! इसलिए ज़्विग ने बैठे-ठाले एक पत्रिका हाथ में उठा-

ली। वह रोम्यां रोलां की मित्र-मण्डली द्वारा संपादित थी और 'जीन क्रिस्टोफ़ी' नामक उपन्यास, जिसपर आगे चलकर नोबुल पुरस्कार मिला, इसी पत्रिका में धारावाहिक रूप से निकल रहा था। उन महिला के आने पर ज़्विग ने उनसे पूछा, "ये रोम्यां रोलां महाशय कौन हैं?" वह इसका कोई संतोषजनक उत्तर न दे सकीं! पेरिस पहुंचकर ज़्विग ने रोम्यां रोलां को तलाश करना शुरू किया। पर किसीसे उनके बारे में पूरा-पूरा पता न चला! आख़िरकार ज़्विग ने अपनी एक पुस्तक रोम्यां रोलां के नाम भेज दी और उन्होंने उत्तर में लिखा, "आप मेरे यहां पधारने की कृपा कीजिये।" ज़्विग उनसे मिले और दोनों में जो घनिष्ठ मित्रता स्थापित होगई, वह जीवन के अंत तक रही। १९२१ में उन्होंने जर्मन-भाषा में रोम्यां रोलां का जीवन-चरित प्रकाशित किया, जिसका अनुवाद अंग्रेजी में भी हो चुका है।

ज़्विग संसार के नागरिक थे। अपनी कलम से उन्होंने कभी एक भी वाक्य ऐसा नहीं लिखा था, जो जातीय विद्वेष को फैलाने में सहायक होता। यद्यपि राष्ट्रीयता के नक्कारखाने में उनकी तूती की आवाज़ किसीने नहीं सुनी, तथापि वह अपने निर्दिष्ट मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए। जिन्होंने प्रथम महायुद्ध में (१९१४ से १९१८ तक) विचार-स्वातंत्र्य का झण्डा ऊंचा रखा और जो घृणा तथा विद्वेष के वातावरण से ऊंचे उठ सके, ऐसे यूरोपियन लेखकों में रोम्यां रोलां तथा स्टीफ़न ज़्विग अग्रगण्य थे और पिछले महायुद्ध का दुष्परिणाम दोनों को ही भयंकर रूप से भोगना पड़ा। दोनों ही हिटलर-शाही की बलिवेदी पर बलिदान होगये!

यदि किसी लेखक को नाजीवाद के अत्याचारों को सबसे अधिक मात्रा में सहन करना पड़ा तो वह स्टीफ़न ज़्विग ही थे। उनकी किताबें लाखों की संख्या में जर्मनी में फैली हुई थीं। वे सब जब्त कर ली गई, जलवा दी गई और बची-खुची तालों में बंद कर दी गई! उन्हें एक मुल्क से दूसरे मुल्क को भागे-भागे फिरना पड़ा। उनका लाखों की कीमत का साहित्यिक संग्रहालय, जिसकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ प्राइवेट म्यूजियमों में की जानी चाहिए, छिन्न-भिन्न हो गया और उनके परिवारिक कष्ट भी पराकाष्ठा को पहुंच गये। अपनी पूज्य वृद्धा माता की अंतिम बीमारी के दिनों में वह उनकी मृत्यु-शय्या के पास भी न पहुंच सके! ज़्विग आस्ट्रियन थे, यहूदी थे, संसार के नागरिक थे, उनका दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीय था और वह शांतिवादी थे। इनमें से एक ही चीज उनकी अनुभूतियों को कष्टमय बनाने के लिए पर्याप्त थी, पर उनमें तो ये सभी एकत्र होगई थी! इसलिए भरपूर मात्रा में उन्हें कालकूट का पान करना पड़ा——ज़हर के एक-दो प्याले नहीं, घड़े-के-घड़े पीने पड़े!

इस संक्षिप्त लेख में हम ज़्विग के आत्मचरित का शतांश भी नहीं दे सकते। यहां हम उनका अंतिम पत्र प्रकाशित करते है, जो उन्होंने अपनी पत्नी के साथ विषपान करने के पहले २२ फरवरी, १९४२ को लिखा था।

"स्वेच्छा से और अपने होश-हवास की दुरुस्तगी में अपने प्राण-त्याग करने के पहले मैं अपना अंतिम कर्तव्य-पालन करना चाहता हू। मैं ब्रेज़िल देश को आश्चर्यजनक भूमि को, जिसने

मुझे प्रेमपूर्ण आश्रय दिया, हार्दिक धन्यवाद देता हूं। इस भूमि-खंड के प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा दिनों-दिन बढ़ती ही गई है और यदि कोई ऐसा देश है, जहां मैं अपना जीवन पुनः प्रारंभ कर सकता था, तो वह ब्रेज़ील ही है; क्योंकि मेरी मातृ-भाषा की भूमि मेरेलिए समाप्त हो चुकी है और मेरी आध्यात्मिक मातृ-भूमि यूरोप ने आत्मघात कर लिया है।

"लेकिन अब मै साठ वर्ष से ऊपर हो चुका और अब बिल्कुल नवीन जीवन प्रारंभ करने के लिए असाधारण शक्ति की आवश्यकता है। जो शक्ति मुझमें थी, वह वर्षों तक लामकान होकर इधर-से-उधर भागे फिरने में खर्च हो चुकी है। इसलिए मैं यही ठीक समझता हूं कि इस जिंदगी का खात्मा कर दिया जाय। जिस जीवन में मुझे बौद्धिक परिश्रम से सबसे अधिक आनंद मिला और जिसमें मैंने व्यक्तिगत स्वाधीनता को ही संसार की सर्वोच्च वस्तु समझा,उसकी समाप्ति ठीक समय पर, जबकि मैं तनकर खड़ा हो सकता हूं, हो जानी चाहिए। संपूर्ण मित्रमंडल को मै नमस्कार करता हूं। ईश्वर करे, दीर्घरात्रि के बाद उषा के दर्शन करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हो। मै तो अपना धैर्य खो चुका हूं, इसलिए उसके पहले ही विदा होता हूं।"

पैट्रोपोलिस

२२-२-१९४२

—**स्टीफ़न ज़्विग**

जहांतक हृदय की कोमल भावनाओं के विश्लेषण और

चित्रण का संबंध है ज़्विग की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में कवींद्र रवींद्र और रोम्यां रोलां के साथ ही की जायगी; पर जहां लेखन-प्रवृत्ति की वफ़ादारी का प्रश्न है, ज़्विग निस्संदेह अद्वितीय थे। ज़िंदगी के जो उतार-चढ़ाव उन्होंने देखे, जिस तरह बेघरबार होकर उन्हें एक देश से दूसरे देश को भागना पड़ा, यहूदी होने के कारण उन्हें घृणा का जितना अधिक शिकार बनना पड़ा और अपनी कोमल भावनाओं पर जितने ज़बरदस्त आघात सहने पड़े, उनके मुकाबले में संसार के बड़े-से-बड़े साहित्य-सेवियों की तपस्या फीकी पड़ जायगी। ज़्विग दु:खों के विश्वविद्यालय में से आचार्य होकर निकले थे, जबकि दूसरे लोग केवल प्रवेशिका परीक्षा पास कर पाते हैं या हद-से-हद स्नातक ही बन पाते हैं।

संभवत: कुछ महानुभाव ज़्विग के आत्मघात के महत्व को न समझ सकेंगे। उनसे हमारा अनुरोध है कि वे उनके विस्तृत आत्मचरित को पढ़ें। वीणा के तार भला घन की चोटों को कबतक सहन कर सकते थे!

यद्यपि हिटलरशाही तथा नाज़ीवाद को खासी करारी चोटें सहनी पड़ी हैं और दोनों ही आज धराशायी होकर धूल चाट रहे हैं, तथापि जो मर्मांतक चोट ज़्विग ने अपने इस आत्म-चरित से दी है, उसकी कसक सबसे अधिक व्यापक होगी।

ज़्विग का आत्मचरित और आत्मबलिदान इस बात का प्रमाण है कि सहस्रों वायुयान तथा लाखों बम जो काम नहीं कर सकते, वह एक दृढ़-प्रतिज्ञ आत्मा कर सकती है। विशाल-काय हाथी के क्षुद्र चींटी द्वारा मारे जाने की बात सच है या

नहीं, हम नहीं जानते, पर नाज़ीवाद के भूत के लिए ज़्विग की जीवनी शिव की विभूति है। एक साहित्य-साधक सती की तरह साधना करके और अपनी समस्त शक्तियों को केंद्रित करके कितना ऊंचा उठ सकता है, ज़्विग का जीवन इसका एक उज्ज्वल दृष्टांत है।

अंतर्राष्ट्रीय प्रेम तथा विश्वव्यापी शांति के जिन सिद्धांतों के लिए ज़्विग जिये और मरे, वे सिद्धांत आज भी संसार में स्थापित नहीं हो पाये और आज भी जगत् के आकाश में घृणा तथा विद्वेष की घटाएं छाई हुई हैं। पर यह अंधकारमय रात्रि बहुत दिनों तक नहीं रहेगी और जिस उषा का स्वप्न ज़्विग ने देखा था, उसके कभी-न-कभी दर्शन अवश्य होंगे।

जिस महामानव ने अपनी जीवन-ज्योति द्वारा द्वेष के अंधकार को दूर करने और प्रेम के प्रकाश को लाने के लिए भरपूर प्रयत्न किया और फिर जिसने अपनी इस जीवन-ज्योति को नाटकीय ढंग से बुझाकर उस पर्दे की बीभत्स कालिमा के पूर्ण रूप से दर्शन करा दिये, उस अद्वितीय साहित्य-साधक स्टीफ़न ज़्विग की स्मृति में हमारी यह श्रद्धांजलि अर्पित है।

ज़्विग अमर हैं और वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है, जब यूरोप की तरह भारतवर्ष में भी उनके ग्रंथ लोकप्रिय बनेंगे और उन्हें अक्षय कीर्ति प्राप्त होगी—

कीर्तिर्यस्य स जीवति।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

विराट

लोकाख्यान

[यह उन विराट की कथा है, जिन्हें उनके देशवासियों ने उनके चार गुणों के लिए सम्मानित किया था। फिर भी विजेताओं के इतिहास अथवा संतों के ग्रंथों में कहीं एक शब्द भी उनके विषय में नहीं मिलता और उनकी स्मृति लोगों के मन से उतर चुकी है।]

: १ :

अपने ज्ञान के प्रकाश से अपने सेवकों के हृदय परिपूर्ण करने के लिए जिस समय भगवान बुद्ध इस भूमि पर निवास करते थे, उससे कुछ ही दिन पहले राजपूताना के महाराजा की प्रजा के रूप में बीरवाघ प्रदेश में विराट नाम का एक कुलीन और सत्यनिष्ठ व्यक्ति रहता था। तलवार चलाने में उसे कमाल हासिल था, कारण कि वह एक महान योद्धा था। वह सबसे अधिक साहसी था और ऐसा बेजोड़ शिकारी कि जिसका निशाना कभी चूके ही नहीं। बर्छी पर उसका हाथ इतना सधा था कि क्या मजाल जो इधर से उधर हो जाय। भुजाओं में वज्र के समान बल था। आकृति गंभीर और आंखें किसीकी भी भृकुटि के आगे न झुकनेवाली। क्रोध में कभी उसने मुट्ठी ऊंची नहीं की और न आवेश में कभी उसकी आवाज़ ही तेज़ हुई। चूंकि वह स्वयं अपने स्वामी का स्वामिभक्त सेवक था, इसलिए उसके दास भी उसकी आदरपूर्वक सेवा करते थे। इसका एक कारण यह भी था कि उस भूमि पर वास करनेवाले समस्त निवासियों में न्याय की दृष्टि से विराट का स्थान बहुत ऊंचा था। भले आदमी जब उसके घर के आगे से

निकलते तो श्रद्धा से सिर झुका देते और बच्चों की निगाह ज्योंही उसपर जाती कि उसकी चमकीली आंखें देखकर वे मुस्करा उठते।

लेकिन एक दिन की बात कि उसके स्वामी पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। महाराज की पत्नी का भाई, जो आधे राज्य का क्षत्रप (वाइसराय) था, समूचे राज्य को हड़प लेने के लिए लालायित हो उठा और दुबका-चोरी भेंट देकर उसने अपना स्वप्न पूरा करने के लिए राज्य के सर्वोत्तम योद्धाओं को अपनी ओर फांस लिया। पुजारियों को भी उसने इस बात पर राजी कर लिया कि अंधेरा होते ही जलाशय में से उन राजहंसों को उड़ा लावे, जो हज़ारों वर्षों से बीरवाघवासियों के लिए राजत्व के चिन्ह रहे थे। अपने हाथियों को उसने मैदान में इकट्ठा किया और असंतुष्ट पहाड़ी-निवासियों को बुलाकर सबके साथ राजधानी की ओर कूच कर दिया।

राजाज्ञा से सबेरे से लेकर संध्या तक पीतल की झांझें बजती रहीं और बाजों की ध्वनि होती रही। रात को मीनारों पर आग जलाकर और उसमें मसाला डालकर खतरे के संकेत के रूप में पीली रोशनी की गई, लेकिन बहुत थोड़े लोग आये। बात यह थी कि राजहंसों की चोरी का समाचार चारों ओर फैल गया था, जिसे सुनकर सरदारों के दिल भीतर बैठे जा रहे थे। सेनापति और हाथियों के अफ़सर, जोकि महाराज के योद्धाओं में बड़े ही विश्वसनीय माने जाते थे, दुश्मन से जा मिले थे। बेचारे महाराजा ने मित्रों की सहायतार्थ इधर-उधर बहुतेरी निगाह दौड़ाई, लेकिन निष्फल। असल में बात यह थी कि वह बहुत कठोर स्वामी रहा था। दण्ड देने को सदैव उद्यत और सामंती कर वसूल करने में

बहुत ही सख्त। महल में तैनाती पर कोई भी भरोसे का सरदार नहीं रहा था और वहां गुलामों और छोटे-मोटे नौकरों की बेबस भीड़ ही दिखाई देती थी।

इस संकट की घड़ी में महाराजा का ध्यान विराट की ओर गया, जिसने उनकी भक्तिपूर्वक सेवा करने की शपथ ली थी। आबनूस की पालकी में सवार होकर महाराजा उस स्वामि-भक्त सेवक के घर की ओर रवाना हुए। ज्योंही वह पालकी से उतरे, विराट ने प्रणाम किया; लेकिन महाराजा ने जब उससे सेना का नेतृत्व कर दुश्मन के खिलाफ़ सेना का संचालन करने का अनुरोध किया तो उनकी आकृति ऐसी हो उठी, मानो वह विराट के सामने एक याचक के रूप में उपस्थित हुए हों। विराट ने श्रद्धा से नत होकर कहा, "स्वामी, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा और जबतक विद्रोह की अग्नि को शांत नहीं कर दूगा, इस छत के नीचे वापस कदम नहीं रखूंगा।"

अनंतर उसने अपने बेटों, संबंधियों और गुलामों को इकट्ठा किया और उन्हें साथ लेकर बचे-खुचे राजभक्तों के साथ मिल-कर आक्रमण के लिए अपनी फ़ौज को तैयार किया। उसकी सेना ने जंगल में होकर कूच किया और शाम होते-होते वे उस नदी के किनारे आये, जिसके दूसरी ओर अनगिनत संख्या में दुश्मन डेरा डाले पड़ा था। विद्रोहियों को अपनी ताकत का पूरा भरोसा था और वे नदी का पुल बनाने के लिए पेड़ काट-काटकर गिरा रहे थे। इसी पुल से अगले दिन सवेरे वे नदी पार करने और उस ओर की भूमि को खून में डुबो देने की आशा कर रहे थे। लेकिन एक जानवर का पीछा करते हुए विराट को

पुल के स्थान से कुछ ऊपर एक घाट का पता लग गया था। आधी रात के समय उसने अपने आदमियों को उसी घाट से नदी पार कराई और दुश्मन को अचानक जा घेरा। जलती मशालें लेकर वफ़ादार सैनिकों ने हाथियों को आतंकित कर दिया, जिससे वे इधर-उधर दौड़ने लगे और सुप्तावस्था में पड़े दुश्मनों के गिरोह में अव्यवस्था फैल गई। विराट पहला व्यक्ति था, जो राज्य को हड़प करने की इच्छा रखनेवाले विद्रोही के डेरे में पहुंचा और सोनेवाले पूरी तरह से जागें इससे पहले ही उनमें से दो को तलवार से उड़ा दिया और फिर तीसरा ज्योंही अपना हथियार लेने आगे बढ़ा कि उसका भी काम तमाम कर दिया। चौथे और पांचवें से अंधेरे में ही उसकी भिड़ंत होगई। उनमें से एक को तो उसने सिर पर वार करके काट गिराया और दूसरे की छाती में बर्छी भोंककर मौत के घाट उतार दिया। ज्योंही वे सब प्राणहीन होकर एक दूसरे के सहारे गिरे, विराट खेमे के द्वार पर जा खड़ा हुआ, ताकि कोई भीतर आकर राजत्व के पावन प्रतीक उन श्वेत राजहंसों को चुरा न ले जाय। लेकिन ऐसा करने कोई आया नहीं, कारण कि दुश्मनों में तो भगदड़ मची थी और वे हर्षोन्मत्त विजयी सैनिकों के दबाव के मारे मुसीबत में थे। बैरी के पीछा करने का शोर थोड़ी देर में धीमा पड़ गया। तब विराट तलवार हाथ में लिये डेरे के सामने बैठ गया और संगी-साथी सैनिकों के लौटने की बाट जोहने लगा।

कुछ देर में वनों के पीछे मंगल दिवस का उदय हुआ। बाल-रवि के प्रकाश में ताड़-वृक्ष स्वर्णिम हो उठे और नदी के जल में उनका प्रतिबिंब ऐसा प्रतीत होने लगा,म।

लाल जलती मशालें हों। सूर्य एकदम लाल था, जैसे पूर्व दिशा के वक्ष पर कोई भयंकर घाव हो। विराट उठा। वस्त्र एक ओर रखे और जलधारा की तरफ बढ़ा। सूर्य भगवान के समक्ष प्रार्थना के रूप में सिर झुकाकर वह नित्य-कर्म के लिए पानी में घुसा और अपने हाथों से रक्त को धोकर साफ़ किया। इसके बाद प्रभात के धवल प्रकाश में वह किनारे पर लौटा और कपड़े पहनकर डेरे की तरफ देखने चला कि रात में उसने क्या-क्या कर डाला। शव पड़े थे। उनकी आंखें खुली थीं और चहरे डर से बिगड़ गये थे। राजद्रोही का सिर कटा पड़ा था और साथ ही छाती में तलवार झुकने से उस व्यक्ति का भी काम तमाम हो गया था, जो बीरवाघ राज्य के प्रधान सेनापति के पद पर रहा था। विराट ने उनकी आंखें बंद कर दीं और उन मृतकों को देखने आगे बढ़ा, जिन्हें उसने सोते में ही मार डाला था। वस्त्रों में अधलिपटे उनके शरीर पड़े थे। उनमें दो तो ऐसे थे, जिन्हें विराट पहचानता नहीं था। विद्रोही के गुलाम। वे दक्षिण-वासी थे। उनके ऊन जैसे बाल थे और चेहरे काले; लेकिन ज्योंही विराट की निगाह अंतिम शव पर गई, उसकी आंखें धुंधली हो आई। उसने देखा कि उसके बड़े भाई बेलंगर का चेहरा उसके सामने है। वह पहाड़ी प्रदेशों का राजा था और राजद्रोही की सहायता के लिए आया था। विराट ने अनजाने उसे मार गिराया था। कांपता-कांपता वह झुका कि देखे कि कहीं उसमें स्पंदन शेष है या नहीं, लेकिन उसके हृदय की गति तो सदैव के लिए पहले ही थम चुकी थी। मृतक की काली-काली चमकीली आंखें उसकी ओर ऐसी ताकती थीं, मानों विराट की आत्मा को

बेध डालेंगी। विराट मुश्किल से सांस ले सका और वहीं मृतकों के बीच बैठ गया। उसे लगा, जैसे वह भी उन्हींमें से एक मुर्दा है। उसने अपनी आंखें अपने मां-जाये भाई की निगाह पर से हटा लीं, जो उसे अपराधी ठहरा रही थीं।

इसके बाद शीघ्र ही बाहर आवाजें सुनाई देने लगीं। सिपाही डेरे को लौट रहे थे। उनके हृदय में आनंद की लहरें हलोरें ले रही थीं और लूट-पाट के धन से संपन्न हो वे चिड़ियों की भांति हर्षोन्मत्त होकर चहचहा रहे थे। यह देखकर कि राज्य में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित करनेवाला और उसके संगी-साथी मारे गये हैं और यह जानकर कि पवित्र राजहंस सुरक्षित हैं, वे खुशी से उछलने और नाचने लगे। उल्लास में भरकर वे विराट की पोशाक चूमते थे और चिल्लाते थे कि तलवार चलाने में वह एक ही है और धन्य है! जब अधिकांश सिपाही लौट आये तो उन्होंने अपनी लूट का सामान गाड़ियों पर लादा। बोझ के मारे गाड़ियों के पहिये जमीन में इतने धंस गये कि खींचने के लिए भैंसों को आर लगानी पड़ी और उनके भार से नावों के डूब जाने का खतरा दीखने लगा। एक संदेश-वाहक जलधारा को पार करके तेजी से महाराजा के पास समाचार लेकर चला। शेष सब सामान के साथ रह गये और विजय पर खुशियां मनाने लगे।

इस बीच विराट ख़ामोश बैठा था, मानो सपना देख रहा हो। केवल एक बार उसके मुंह से आवाज़ निकली, जबकि सिपाही मृतकों के शरीर से कपड़े उतारने लगे। विराट उठ खड़ा हुआ और उसने आदेश दिया कि शवों के दाह के लिए चिताएं

तैयार की जायं। नौकर-चाकर आश्चर्यचकित थे कि वह उन षड़्यंत्रकारियों के साथ ऐसी दयालुता का बर्ताव क्यों कर रहा है, जिनको बोटी-बोटी गीदड़ों से नुचवा डालनी चाहिए थी। लेकिन फिर भी जो आज्ञा उन्हें मिली, उन्होंने उसका पालन किया। चिताएं जब तैयार होगई तो स्वयं विराट ने उनमें आग लगाई और लपटों में सामग्री तथा चंदन की आहुति दी। तत्पश्चात् मुह फेरकर वह चुपचाप खड़ा होगया और उस समय तक खड़ा रहा, जबतक कि जलती चिताएं गिरने तथा चमकती राख जमीन पर बिखरने न लगी।

इस बीच नौकर-चाकरों ने वह पुल तैयार कर डाला, जिसे शेखी में भरकर एक दिन पहले दुश्मन के आदमियों ने बनाना प्रारंभ किया था। केले के पत्ते हाथ में लिये पहले योद्धाओं ने पुल पार किया, फिर गुलामों ने और उसके बाद अश्वारोही सरदारों ने। विराट ने अधिकांश योद्धाओं को पहले ही रवाना कर दिया, क्योंकि उनका शोर और संगीत उसकी मन:स्थिति से मेल नहीं खाता था। पुल के बीच में रुककर उसने प्रवाहित धारा को दाएं-बाएं देखा। जो सिपाही उसके आगे पुल पार कर चुके थे और जो पार करने को थे तथा जो सेनापति की आज्ञा से पीछे चल रहे थे, सब-के-सब आश्चर्य करने लगे। उन्होंने देखा कि विराट ने अपनी तलवार ऊंची की, मानो स्वर्ग को भयभीत करना चाहता हो, लेकिन जब उसकी बांह नीची हुई तो उसकी उंगलियां ढीली पड़ गई, तलवार हाथ से छूटकर नदी की धारा में गिरी और पानी में विलीन होगई। दोनों किनारों से नंगे बालक पानी में कूद पड़े। उनका अनुमान

था कि तलवार अचानक गिर गई है और गोता लगाकर वे उसे निकाल लाना चाहते थे, लेकिन विराट ने उन्हें रोक दिया और आगे बढ़ चला। उसके दोनों ओर आश्चर्य-चकित नौकर-चाकर थे। विराट बहुत ही दुखित था। घर तक का लंबा रास्ता पार करते समय एक शब्द भी उसके होठों से नहीं निकला।

बीरवाघ के सुसज्जित द्वार और मीनारों के शिखर अब भी काफी दूरी पर थे, जबकि एक सफेद धूल का बादल आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया। धूल को चीरकर अग्रदूत और अश्वारोही चले आ रहे थे। सेना को देखते ही वे रुक गये और सड़क पर उन्होंने कालीन बिछा दिये। यह इस बात का सूचक था कि महाराजा का आगमन हो रहा है। महाराजा के चरण जन्मदिवस से लेकर मृत्युसमय तक सामान्य भूमि का स्पर्श नहीं कर सकते थे। अब महाराजा सामने दिखाई देने लगे। वह हाथी पर सवार थे और उनके चारों ओर नवयुवकों की टोली थी। आगे आकर उनका आज्ञाकारी हाथी झुका और महाराजा उतर-कर कालीन पर आ खड़े हुए। विराट ने चाहा कि अपने स्वामी को झुककर प्रणाम करे, लेकिन उससे पहले ही महाराजा उसे आलिंगन में बांधने के लिए तेजी से आगे बढ़ आये। यह एक ऐसा सम्मान था, जो किसी भी सेवक को प्राप्त नहीं हुआ था। विराट ने राज-हंस मगाये। जब उन हंसों ने अपने श्वेत पंख फड़फड़ाये तो इतने ज़ोर से हर्षध्वनि हुई कि उससे घोड़े चौककर दो पैरों पर खड़े हो गये और महावतों के लिए हाथियों पर नियंत्रण रखना कठिन हो गया। विजय के इन चिन्हों के बीच महाराजा ने एक बार पुनः विराट का आलिंगन किया और उस सेवक को बुलाया,

जोकि राजपूतों के प्रारंभिक शूरमा की तलवार लिये उनके साथ था। सातसौ वर्ष से यह अस्त्र महाराजाओं के खजाने में सुरक्षित रहा था। उसकी मूठ जवाहरातों से जगमगाती थी और उसकी धार पर सुनहरे अक्षरों में विजय के मंगलसूत्र खुदे थे। लिखावट प्राचीन थी और उसे संत तथा पुजारी लोग ही पढ़ सकते थे। महाराजा ने तलवारों में श्रेष्ठ उस तलवार को आभार के रूप में तथा यह प्रदर्शन करने के हेतु कि आगे से वह उनके योद्धाओं का सरदार और फौजों का नायक होगा, विराट को भेंट किया।

लेकिन विराट ने सिर झुकाकर कहा, "महाराज, आप अत्यंत दयालु और कृपालु हैं। क्या मैं एक प्रार्थना कर सकता हूं?"

प्रार्थी को नतमस्तक देख महाराजा बोले, "तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारी निगाह उठाकर मेरी ओर देखने से पहले ही स्वीकार है। मांगते ही मेरा आधा राज्य तुम्हारा।"

इसपर विराट ने कहा, "तो महाराज, आज्ञा दीजिये कि यह तलवार खजाने को वापस भेज दी जाय, क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि आयंदा कभी भी तलवार नहीं चलाऊंगा। अपने भाई की मैंने हत्या कर डाली है। मुझे छोड़ एकमात्र वही तो था, जिसे मेरी मां ने अपने गर्भ में धारण किया था और जिसका मां ने मेरे साथ ही लालन-पालन किया था!"

आश्चर्य से महाराज ने विराट की ओर देखा। फिर उत्तर दिया, "ऐसी हालत में तुम बिना तलवार के ही मेरी सेना के नायक हो जाओ, जिससे मुझे यह पता रहे कि मेरा राज्य

दुश्मनों से सुरक्षित है, क्योंकि आजतक कभी भी इतने दुश्मनों के विरुद्ध किसी भी बहादुर व्यक्ति ने सेना का इस क़दर बुद्धिमानी के साथ संचालन नहीं किया। मेरी इस तलवार को ले लो। वह सत्ता का चिन्ह है। मेरा यह घोड़ा भी लो, जिससे सब लोगों को मालूम हो जाय कि तुम मेरे योद्धाओं के सरदार हो।"

लेकिन विराट ने विनयपूर्वक पुनः निवेदन किया, "महाराज, एक अदृश्य शक्ति ने मुझे संकेत किया है, जो मेरे हृदय में घर कर गया है। अपने भाई का मैंने हनन कर दिया। इससे मुझे सीख मिली है कि जो दूसरे को मारता है, वह अपने भाई की ही हत्या करता है। मैं युद्ध में सेना का नेतृत्व नहीं कर सकता, क्योंकि तलवार बल का प्रतीक है और बल सत्य का वैरी है। जो कोई हत्या के पाप में भाग लेता है, वह स्वयं हत्यारा है। मेरी इच्छा यह नहीं है कि मैं दूसरों में भय उत्पन्न करूं। मैं भीख मांगकर रोटी खा लेना पसंद करूंगा, बजाय इसके कि मैं उस संकेत से इंकार करूं, जिसपर चलने की मुझे आज्ञा हुई है। चीजें अनगिनत और अनंत हैं और हमारा जीवन अल्प है। मैं अब चाहता हूं कि मेरे शेष दिन बिना और बुराई किये व्यतीत हों।"

यह सुनकर थोड़ी देर के लिए महाराजा का चेहरा फ़क पड़ गया और अबतक जो खुशी उसपर खेल रही थी, उसकी जगह भयातुर निस्तब्धता छा गई। बाबा-परबाबा के ज़माने से लेकर आजतक कभी भी ऐसा न हुआ था कि किसी सरदार ने लड़ाई को इस प्रकार तिलांजलि दे दी हो अथवा किसी सरदार ने

महाराजा की भेंट को ऐसे अस्वीकार किया हो। लेकिन महाराजा की निगाह फिर उन पवित्र राजहंसों पर गई, जिन्हें विराट राजद्रोहियों से छीनकर लाया था। विजय के इन चिन्हों को देखकर महाराजा का चेहरा चमक उठा और उन्होंने कहा, "मैंने तुम्हें हमेशा दुश्मनों के साथ लड़ने में बहादुर पाया है। राज्य के नौकरों में ईमानदार व्यक्ति के रूप में तुम अपनी सानी नहीं रखते। यदि युद्ध में मुझे तुम्हारी सेवाओं से वंचित होना ही पड़े तो किसी दूसरे क्षेत्र में मै तुम्हारी सेवाओं से वंचित नही रह सकता। तुम ईमानदार हो, बुराई को पहचानते हो और उसका उन्मूलन कर सकते हो। इसलिए तुम मेरे न्याया-धीशों मे सबसे ऊंचे न्यायाधीश होगे और मेरे महल से न्याय का निर्णय किया करोगे, जिससे कि मेरी चहारदीवारी के भीतर सत्य का प्रसार हो और समूची भूमि में सचाई का पालन हो।"

विराट ने श्रद्धा से सिर झुका दिया। महाराजा ने उसे राज-हाथी पर सवार होने का आदेश दिया। तब वे साथ-साथ साठ मीनारोंवाले उस नगर में प्रविष्ट हुए। उस समय ऐसी हर्ष-ध्वनि हो रही थी, मानों तूफानी सागर में जोर की लहरें उठ-कर गर्जन कर रही हों।

: २ :

अब से आगे प्रभात से लेकर सूर्यास्त तक राज-प्रासाद की छत्रच्छाया में अपने आसन से विराट महाराजा के नाम पर न्याय का निर्णय करने लगा। उसके फैसले उस तुला की भांति होते थे, जिसकी कमानी इधर या उधर झुकने के पूर्व देर तक कंपकंपाती है। उसकी चमकीली आंखें गहराई के साथ अभियुक्त की आत्मा को टटोलती थीं और उसके प्रश्न अपराध की तह को ऐसे कुरेदते थे जैसे कि बिज्जू अंधकारपूर्ण भू-गर्भ में अपना घर बनाने के लिए मिट्टी को कुरेदता है। उसका दण्ड कठोर होता था; लेकिन मुकदमे की सुनवाई के दिन ही वह अपना फैसला कदापि न देता था। न्याय की घोषणा करने के पहले एक रात का अतर वह हमेशा डाल लेता था। सूर्योदय के पूर्व घंटों उस मामले के पक्ष-विपक्ष में सोचता हुआ वह घर की छत पर इधर-से-उधर टहलता था और उसकी पग-ध्वनि उसके कुटुम्बी जनों को सुनाई पड़ती थी। फैसला देने से पहले वह अपना हाथ और मुह पानी से धो डालता था, जिससे कि उसका निर्णय भावावेश से मुक्त रहे। फैसला दे चुकने के बाद वह हमेशा अपराधी से पूछता था कि कहो भाई, मेरे निर्णय से तुम्हें कोई शिकायत तो नहीं है। उत्तर में शायद ही कभी किसीने आपत्ति की हो। अपराधी चुपचाप न्यायालय की सीढ़ी का चुंबन कर नतमस्तक हो दण्ड को ऐसे स्वीकार कर लेता था, मानों वह ईश्वरप्रदत्त निर्णय हो।

विराट ने मृत्यु का दण्ड कभी किसीको नहीं दिया, अपराध कितना ही जघन्य क्यों न हो और मृत्यु का दण्ड देने के लिए चाहे जितने प्रमाण क्यों न हों। अपने हाथों को रक्त-रंजित करने से वह डरता था। राजपूतों के प्राचीन निर्झर का वह पात्र, जिसके ऊपर, वार करने से पहले, जल्लाद अपराधी से झुकने के लिए कहता था और जिसके पत्थर ख़ून के मारे काले पड़ गये थे, विराट की जजी के वर्षों में सफेद निकल आया। फिर भी उस भूमि पर अपराध-वृत्ति में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई। विराट अपराधी को वंदी-गृह में भेज देता था—उस वंदी-गृह में जो एक चट्टान को काटकर बनाया गया था अथवा वह उन्हें पहाड़ों पर भेजा जाता था, जहां बगीचों की दीवारों के लिए उन्हें पत्थर खोदने पड़ते थे, या नदी-तट की चावल की मिलों में, जहां उन्हें हाथियों के साथ जुतकर चक्र घुमाने पड़ते थे। मानव-जीवन को वह सम्मान की दृष्टि से देखता था। लोग उसका आदर करते थे, कारण कि उसका कोई भी निर्णय कभी गलत सिद्ध नहीं होता था और सत्य की खोज करते-करते वह कभी थकता न था। न कभी उसके शब्दों से उसका क्रोध ही प्रदर्शित हाता था। दूर-दूर से किसान लोग बैल-गाड़ियों में बैठकर अपने झगड़े सुलझवाने के लिए उसके पास आते थे। पुजारी उसकी सम्मति को शिरोधार्य करते थे और महाराजा भी उससे सलाह लेते थे। उसकी ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी और लोग भूल गये कि कभी उन्होंने उसकी तलवार चलाने की निपुणता की भी प्रशंसा की

थी। समूचे राजपूताने में अब वह न्याय के स्रोत के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

विराट की जजी के छठे वर्ष में एक बार ऐसा हुआ कि कुछ लोग कज्ज़ार जाति के एक युवक को पकड़कर लाये। कज्ज़ार लोग पहाड़ियों के उस ओर रहते थे और दूसरे ही देवी-देवताओं की मानता करते थे। युवक के पैर लहूलुहान हो रहे थे, क्योंकि वे लोग उसे कई दिन तक लंबा सफर कराकर लाये थे। उसकी हृष्ट-पुष्ट भुजाएं कसकर बांध रखी थी, जिससे वह उन्हें चलाकर कोई हानि न पहुंचा दे, जिसकी संभावना उसकी भयंकर और चिड़चिड़ी आंखों से साफ दिखा देती थी। न्यायाधीश के आसन के निकट लाकर उन्होंने वंदी को विराट के सामने घुटनों के बल बैठने के लिए बाध्य किया और फिर स्वयं साष्टांग प्रणाम करके प्रार्थना करने के लिए हाथ जोड़कर खड़े होगये।

न्यायाधीश ने उत्सुकतापूर्ण दृष्टि से उन अजनबियों की ओर देखा और पूछा, "भाइयो, तुम कौन हो, जो इतनी दूर से चलकर मेरे पास आये हो ? और यह आदमी कौन है, जिसे तुमने इस प्रकार जकड़ रखा है ?"

उनमें जो सबसे बड़े थे, उन्होंने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "भगवन्, हम लोग गड़रिये हैं। पूर्वी इलाके में रहते हैं। जिसे हम लोग आपके पास लाये हैं, वह महान् पापी है। इस दुष्ट ने इतने आदमियों की हत्या कर डाली है, जितनी कि उसके हाथों में उंगलियां भी नहीं हैं। हमारे गांव के एक आदमी से इसने कहा कि अपनी लड़की का ब्याह मेरे साथ कर दो; लेकिन उसने इंकार कर दिया, कारण कि इसकी जाति के रीति-रिवाज

घृणित है। वे लोग कुत्तों को खा जाते हैं और गायों की हत्या कर डालते हैं। इसके साथ विवाह न करके उस आदमी ने अपनी लड़की तराई प्रदेश के एक सौदागर को ब्याह दी। इस-पर गुस्से में भरकर यह कमबख्त हमारे बहुत-से ढोरों को हांक ले गया और एक रात आकर इसने लड़की के बाप और तीन भाइयों को मार डाला। जब कभी उस घर का कोई आदमी पहाड़ी पर ढोर चराने गया कि उसने उसकी हत्या कर डाली। इस तरह हमारे गांव के ग्यारह आदमियों का इसने खून कर दिया। आखिर हम लोगों ने इकट्ठे होकर इसका पीछा किया और बड़ी मुश्किल से इसे पकड़ पाया। न्यायदाता, अब हम इसे आपके पास लाये हैं कि आप इस हत्यारे से हमारे गांव का पीछा छुड़ा दें।"

विराट ने सिर उठाया और बंधनों में जकड़े उस व्यक्ति की ओर देखकर पूछा, "क्यों भई, तुम्हारे बारे में ये लोग जो कहते हैं, वह सच है ?"

'तुम कौन हो ? महाराजा हो ?"

"मैं विराट हूं। महाराजा का अनुचर और न्याय का सेवक। मै चाहता हूं कि अपनी गलतियों का प्रायश्चित्त करलूं और सच को झूठ से अलग करदू।"

अभियुक्त क्षणभर मौन रहा। अनंतर तीक्ष्ण दृष्टि से उसने विराट की ओर देखा।

"न्याय के इतने ऊंचे आसन पर बैठकर तुम कैसे जान सकते हो कि सच क्या है और झूठ क्या है ? तुम्हारी जानकारी तो उसीसे होती है न, जो लोग तुमसे आकर कहते हैं ?"

विराट बोला, "इन लोगों के अभियोग के विरुद्ध तुम्हें जो कुछ कहना हो, कहो, जिससे दोनों पक्षों की बात सुनकर मुझे मालूम हो सके कि सचाई क्या है ?"

बंदी की भौंहें घृणा से तन गईं।

"मुझे इन लोगों से क्या झगड़ना ! तुम कैसे जान सकते हो कि मैंने क्या किया ? मैं स्वयं नहीं जानता कि गुस्सा आ जाता है तो मेरे हाथ क्या कर बैठते हैं ? उस आदमी के साथ मैंने न्याय ही किया, जिसने एक औरत रुपये के मोल बेच दी और उसके बाल-बच्चों और नौकर-चाकरों के साथ भी मैंने न्याय ही किया। ये लोग चाहते हैं तो मेरे ऊपर आरोप लगावें, मैं तो इन्हें घृणा की दृष्टि से देखता हूं और तुम्हारे फैसले को भी।"

आरोपियों ने देखा कि बंदी इतने न्यायनिष्ठ जज के प्रति अवमानना प्रकट कर रहा है तो उनमें क्रोध का एक तूफान उठ खड़ा हुआ। पेशकार ने उसे मारने के लिए अपना कोड़ा उठाया। विराट ने उन सबको शांत रहने का इशारा किया और फिर प्रश्न पूछने लगा। आरोपी जब-जब आरोप लगाते थे, विराट बंदी से उसका उत्तर देने के लिए कहता था। लेकिन अभियुक्त क्रोध में दांत पीसता था। केवल एक बार उसने मुंह खोला। बोला, "दूसरों के शब्दों से सचाई तुम जान कैसे सकते हो ?"

मध्याह्न का सूर्य ठीक सिर पर आ चुका तब मुकद्दमे की सुनवाई खत्म हुई। फिर उठते हुए, जैसी कि उसकी टेव थी, विराट ने कहा, "अब मैं घर जा रहा हूं और फैसला कल सुनाऊंगा।"

आरोपियों ने विनय की, "स्वामी, तुम्हारी दया के लिए

हम लोग सात दिन का सफ़र करके आये हैं और घर लौटने में सात दिन फिर लगेंगे। हम कल तक कैसे रुकें? हमारे ढोर-डंगर प्यासे होंगे और हमारी ज़मीन की जुताई होनी है। हमारी प्रार्थना है कि आप अपना फैसला अभी सुना दें।"

विराट फिर बैठ गया और क्षणभर के लिए विचार-मग्न हो गया। उसकी भौंहें उस व्यक्ति की भांति झुक आईं, जिसके सिर पर भारी बोझा हो। अबतक कभी भी उसे ऐसे व्यक्ति को, जिसने क्षमा की याचना न की हो अथवा उसे जो उद्धत बना रहा हो, दण्डित करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ा था। वह बहुत देर तक विचारों में डूबा रहा और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उसकी चिंता भी बढ़ती गई। तब वह उठकर झरने पर गया और ठण्डे पानी में हाथ-मुंह धोये, ताकि उसके शब्द आवेशमुक्त रहें। फिर अपने स्थान पर आसीन होकर उसने कहा—

"परमात्मा करे, मेरा फैसला न्यायपूर्ण हो। इस अभियुक्त के सिर पर, जिसने ग्यारह जीवित आत्माओं का हनन किया है, भयंकर पाप चढ़ा है। लगभग एक वर्ष तक आदमी का जीवन मां की कोख में अदृश्य रूप से पोषित होता है। इस कारण उन व्यक्तियों में से हरेक के लिए, जिन्हें इसने मार डाला है, एक वर्ष तक भू-गर्भ के अंधियारे में इसे छिपकर रहना होगा। और चूंकि इसके हाथों ग्यारह आदमियों का खून हुआ है, अतः हर वर्ष ग्यारह बार इसके सौ-सौ कोड़े लगेंगे, जिससे हत्या किये व्यक्ति की संख्या के अनुसार वह पाप का प्रायश्चित्त कर सके। लेकिन उसके जीवन से उसे वंचित नहीं किया जायगा। जीवन

तो परमात्मा की देन है और आदमी को भगवान की चीजों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। ईश्वर करे, मेरा यह निर्णय, जिसे मैंने किसी व्यक्ति की आज्ञानुसार नहीं, बल्कि अपराध के प्रतिकार के लिए घोषित किया है, न्यायपूर्ण हो!"

घोषणा होते ही वादियों ने आदरपूर्वक उसके आसन का चुबन किया, लेकिन बंदी ने खामोशी ही रखी। विराट ने उससे कहा, "देखो, मैंने तुमसे सफाई देने के लिए कहा था, ताकि हल्की सज़ा देने के लिए मुझे कारण मिल जाय और अपने आरोपियों के विरुद्ध तुम मुझे कुछ सहायता दे सको; लेकिन तुम्हारे होठ तो जैसे चिपक गये थे। अगर मेरे निर्णय में कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो परमात्मा के सामने उसके लिए तुम मुझे दोषी न ठहराकर अपने मौन को ही दोष देना। मुझे तो इस बात की खुशी है कि मैं तुम्हारे प्रति दयावान रहा हूं।"

बंदी ने उत्तर दिया, "मुझे तुम्हारी दया नहीं चाहिए। निमिष मात्र में जो जीवन तुम छीन रहे हो, उसकी तुलना में तुम मुझे दया दे भी क्या सकते हो?"

"मैं तुम्हारा जीवन कहां छीन रहा हूं?"

"नहीं, तुम मुझसे मेरा जीवन ही छीन रहे हो और मेरे कबीले के सरदारों की अपेक्षा, जिन्हें तराई भूमि के लोग जंगली कहते हैं, कहीं अधिक निर्दयता के साथ। तुम मुझे मार क्यों नहीं डालते? मैंने तो आदमियों को आदमी की तरह मारा; लेकिन तुम तो मुझे मुर्दे की तरह अंधेरी ज़मीन में गाड़ दे रहे हो, जहां पड़ा-पड़ा मैं सड़ता रहूं। और ऐसा तुम कर क्यों रहे हो? इसलिए कि तुम्हारा कायर हृदय रक्त-पात करने से डरता है और

क्योंकि तुम्हारी आत्मा दुर्बल है। तुम्हारा कानून कपट है और तुम्हारे फैसले से लोगों का बलिदान होता है। तुम मेरी हत्या कर डालो, क्योंकि मैंने भी तो हत्या की है।"

"मैंने तुम्हें ठीक ही सजा दी है।"

"ठीक ही ! लेकिन न्यायदाता, वह कौन-सी तराजू है, जिससे तुम ठीक तौलते हो ? किसने तुममें कोड़े लगाये हैं कि तुम जान सको कि कोड़े की मार क्या होती है ? अपनी अंगुलियों पर तुम वर्षों की गिनती ऐसे गिन डालते हो, मानो दिन के उजियाले में व्यतीत हुए वर्ष में और अंधेरी धरती के भीतर कारावास में बिताये वर्ष में कोई अंतर ही न हो ? तुमने जेलखाना काटा है, जो जान सको कि मेरे जीवन के कितने वसंत तुम छीन रहे हो ? तुम अज्ञानी हो और तुममें ईमानदारी भी नहीं है, कारण कि जो चोट खाता है, वही जान सकता है कि चोट क्या होती है। जो चोट करता है, वह उसके कष्ट को क्या जान सकता है ? जिसके बिवाई फटती है, वही उसकी पीर का अनुभव करता है। घमंड में भरकर तुम मानते हो कि तुमने अपराधी को दण्डित कर दिया, लेकिन तुम सबसे भयंकर अपराधी हो, क्योंकि जब मैंने हत्या की थी, मैं क्रोध से अभिभूत था, आवेश की गुलामी में जकड़ा था; लेकिन तुम तो ठण्डे दिमाग़ से मेरी जान ले रहे हो, जिसकी गुरुता का अनुमान तुम्हारे हाथ नहीं कर सकते और जिसका परिणाम तुमने स्वयं कभी नहीं भुगता। सिर के बल नीचे गिरने से पहले ही तुम न्याय के आसन से नीचे उतर आओ। जो संयोग के आधार पर चीज़ों का निर्णय करता है, वह बड़ा अधम है और वह अज्ञानी

भी बड़ा दुष्ट है, जो सोचता है कि वह जानता है कि न्याय क्या है। ओ अज्ञानी जज, न्याय की कुर्सी से नीचे उतर आओ और जीवित व्यक्तियों को मौत की सजा का फैसला मत दो!"

क्रोध से बंदी पीला पड़ गया। क्रुद्ध दर्शकगण फिर उसपर टूट पड़ने को हुए। विराट ने उन्हें रोक दिया और बंदी की ओर से मुंह फेरकर उसने धीरे-से कहा, "जो फैसला मैं दे चुका हूं, उसे रद करना अब मेरे बस की बात नहीं है। मुझे विश्वास है कि मेरा फैसला ठीक है।"

विराट जाने के लिए उठा। आदमियों ने कैदी को पकड़ लिया। बंधनों से जकड़ा वह संघर्ष कर रहा था। लेकिन कुछ कदम चलकर विराट रुका और उसने उस अपराधी पर एक निगाह डाली। वह बड़े ही दृढ़ और क्रुद्ध नेत्रों से विराट की ओर ताक रहा था। विराट कांप उठा। उसे लगा कि वे आंखें ठीक वैसी ही हैं, जैसी कि उसके दिवंगत भाई की थीं, जिसकी हत्या अपने हाथ उसने कर डाली थी और जिसे राज-द्रोही के तंबू में उसने मरा हुआ पाया था।

× × ×

उस संध्या को विराट ने किसी से एक शब्द भी नहीं कहा। उस अजनबी की निगाह ने अग्निवाण की भांति उसकी आत्मा को बेध डाला था। सारी रात उसे नींद नहीं आई और घरवाले ताड़वृक्षों के पीछे प्रभात की अरुणिमा फैलने तक सारी रात घर की छत पर उसके इधर-उधर घूमने की ध्वनि सुनते रहे।

सूर्योदय होने पर विराट ने मंदिर के तालाब में नित्य-कर्म

से छुट्टी पाई। फिर पूर्व की ओर मुंह करके उसने प्रार्थना की। अनंतर घर लौटकर पीले रेशम की विशिष्ट पोशाक पहनी। इसके बाद कुटुंबी-जनों का उसने अभिवादन किया। इस शिष्टाचार से वे लोग आश्चर्यचकित होगये; लेकिन उन्हें कुछ पूछने का साहस न हुआ। विराट अकेला राजा के महल की ओर चल दिया, जहां दिन और रात में किसी भी घड़ी जाने की उसे छूट थी। वहां पहुंचकर महाराजा के आगे नतमस्तक होकर विराट ने महाराजा की पोशाक के छोर का स्पर्श किया, जो इस बात का सूचक था कि वह कुछ याचना करना चाहता है।

स्नेह-पूर्वक महाराजा ने उसकी ओर देखकर कहा, "तुमने इच्छापूर्वक मेरी पोशाक का स्पर्श किया है। मांग करने से पहले ही मै तुम्हारी इच्छा को स्वीकार करता हूं।"

विराट सिर झुकाये खड़ा रहा।

"आपने अपने न्यायाधीशों का मुझे सरताज बनाया है। छः वर्ष तक मैं आपके नाम पर फैसले करता रहा हूं। मुझे पता नहीं कि मैने ठीक न्याय किया या नहीं। अब आप मुझे एक महीने आराम करने और शांतिपूर्वक रहने की आज्ञा दीजिये, जिससे मैं सत्य के मार्ग की खोज कर सकूं। मुझे यह भी अनुमति दीजिये कि मैं अपनी राय आपसे तथा दूसरों से अलग रख सकूं। मैं अन्याय-रहित कार्य करना चाहता हूं और आपसे अलग होकर रहना चाहता हूं।"

महाराजा अचरज से भर उठे। बोले, "आज से महीनेभर तक न्याय की दृष्टि से मेरा राज्य बड़ा दीन हो जायगा। फिर

भी मैं तुमसे यह नहीं पूछूंगा कि तुम किस मार्ग का अनुसरण करना चाहते हो। परमात्मा करे, तुम उस मार्ग पर चलकर सत्य को प्राप्त कर सको।"

कृतज्ञभाव से राज-सिंहासन का चुंबन करके सिर झुकाकर विराट वहां से चल दिया।

: ३ :

घर आकर उसने पत्नी और बच्चों को बुलाया। बोला, "एक महीने तक तुम लोग मेरी सूरत नही देख सकोगे। मुझे विदाई दो और कोई पूछताछ न करो। जाओ, अपने कमरों में जाकर बंद हो जाओ, जिससे तुममें से कोई भी यह न देख सके कि घर से बाहर मैं किधर जाता हूं। महीना पूरा न हो जाय तबतक तुम मेरे बारे मे किसी प्रकार की भी जानकारी की कोशिश मत करना।"

सबने चुपचाप उसके आदेश को शिरोधार्य किया।

तब विराट ने काली पोशाक पहनकर भगवान की मूर्ति के समक्ष प्रार्थना की। अनंतर ताड़पत्र पर एक लंबा पत्र लिखा और उसे मोड़कर रख लिया। रात होते ही सुनसान घर का त्याग कर वह उस विशाल चट्टान पर गया, जिसमें गुफ़ाएं और बंदीगृह थे। वहां पहुंचकर उसने द्वार खटखटाया। निद्रामग्न जेलर उठा और उसने पूछा, "कौन ?"

"मै हूं विराट, प्रधान न्यायाधीश। मैं उस कैदी को देखने आया हूं, जिसे कल यहां लाया गया था।"

"स्वामी, उसकी कोठरी तो नीचे पाताल में है, सबसे नीचे अंधेरे में। क्या मैं आपको वहां ले चलूं ?"

"मैं उस जगह को जानता हूं। मुझे चाबी दे दो और तुम सोने चले जाओ। कल दरवाज़े के बाहर तुम्हें चाबी रखी मिल जायगी। देखो, किसीसे भी इस बात की चर्चा मत करना

कि आज रात तुमने मुझे यहां देखा था ।"

जेलर चाबी ले आया और रोशनी के लिए एक बत्ती। विराट के इशारे पर वह लौट गया और जाकर बिस्तरे पर पड़ रहा। विराट ने गुफ़ा का द्वार खोला और तहखाने में प्रविष्ट हुआ। एक शताब्दी पहले राजपूताने के महाराजाओं ने कैदियों को इसी चट्टान की गुफा में बंद करना प्रारंभ किया था। हर रोज बंदियों को पत्थर खोद-खोदकर गुफा को और गहरा करके नई कोठरियां बनानी पड़ती थीं, जिससे अगले दिन आने वाले बंदी वहां स्थान पा सकें।

विराट ने एक बार वृत्ताकार आकाश की ओर देखा। टिमटिमाते तारे दिखाई दे रहे थे। फिर उसने द्वार बंद कर दिया। उसके चारों ओर अंधेरा छा गया। उस अंधियारे में बत्ती का प्रकाश ऐसे फैलता था जैसे कोई जंगली पशु अपने शिकार पर दौड़ता है। पेड़ों की सरसराहट और बंदरों की 'कें-कें' उसे अब भी सुनाई पड़ रही थी। पहली मंजिल की सीढ़ियां उतरकर नीचे पहुंचने पर पेड़ों की सरसराहट इतनी हल्की सुनाई पड़ने लगी, मानों बहुत दूर से आ रही हो। उससे और नीचे गया तो वहां घोर निस्तब्धता छाई थी, मानो वह समुद्र की तह में पहुंच गया हो। सबकुछ अविचल और सर्द। पत्थरों में से नमी की गंध आ रही थी। ताजी मिट्टी की सुगंध जरा भी नहीं थी। वह ज्यों-ज्यों भीतर बढ़ता गया उसके पैरों की ध्वनि उस नीरवता में और भी कर्कश होती गई।

बाहरी सतह से कैदी की कोठरी पांच मंजिल नीची थी, सबसे ऊंचे ताड़वृक्ष की लंबाई से भी नीची। विराट अंदर गया

और उसने बत्ती ऊपर उठाकर अंधेरे में पड़े एक ढेर को देखा, जो पलभर को हिलता-सा जान पड़ा। फिर जंजीर की खड़-खड़ाहट हुई।

पृथ्वी पर पड़ी उस काया के ऊपर झुककर विराट ने कहा, "क्यों भाई, तुम मुझे चीन्हते हो ?"

"क्यों नहीं, तुम वही तो हो, जिसे लोगों ने मेरे भाग्य का स्वामी बना दिया था और जिसने मेरे भाग्य को अपने पैरों तले रौंद डाला था।"

"मैं स्वामी नहीं, महाराजा का और न्याय का चाकर हूं। न्याय का पालन करने के लिए ही मैं यहां आया हूं।"

बंदी ने अविचल और नैराश्यपूर्ण दृष्टि से न्यायाधीश की ओर देखा। बोला, "मुझसे क्या चाहते हो ?"

लंबी खामोशी के बाद विराट ने कहा, "अपने फैसले से मैंने तुम्हें चोट पहुंचाई और ठीक उसी तरह तुमने अपने कठोर शब्दों से मुझे चोट पहुंचाई है। कह नहीं सकता कि मेरा निर्णय ठीक था; लेकिन तुमने जो कुछ कहा था, उसमें सचाई थी। जिस दण्ड की अनुभूति स्वयं किसी व्यक्ति को नहीं है, उससे उसे दूसरे को दण्डित नहीं करना चाहिए। मैं अबतक अज्ञानी था। अब सीखने के लिए सहर्ष उद्यत हूं। इस अंधियारे में मैंने सैकड़ों को ही भेजा होगा। बहुतों के साथ मैंने ऐसा कठोर व्यवहार किया है कि उसकी कठोरता मैं स्वयं अनुभव नहीं कर सकता। अब मैं यहां सचाई की खोज में आया हूं और चाहता हूं कि उसे पा लूं, जिससे मै सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाऊं।"

बंदी खामोश रहा। उसकी जंजीर की हल्की खड़खड़ाहट के अतिरिक्त कुछ भी सुनाई नहीं दिया। विराट फिर बोला, "मैं जानना चाहता हूं कि वह कौन-सी चीज है, जिसकी वजह से मैंने तुम्हें इस कालकोठरी में डाल दिया ? मैं अपने शरीर पर कोड़े की चोट अनुभव करना चाहता हूं और स्वयं महसूस करना चाहता हूं कि जेलखाने की जिंदगी कैसी होती है। एक महीने में तुम्हारी जगह रहूंगा, जिससे मुझे पता चल जाय कि न्याय के नाम पर मैंने लोगों को कितनी पीड़ा पहुंचाई है। तत्पश्चात् मैं एक बार फिर न्यायाधीश के आसन पर बैठकर निर्णय दूंगा। उस समय मुझे आभास रहेगा कि मेरे निर्णय में कितना बल है। इस बीच तुम स्वतंत्र होकर यहां से चले जाओ। मै तुम्हें चाबी दे दूगा, जिससे तुम द्वार खोलकर प्रकाश की दुनिया में पहुंच जाओ। मैं तुम्हें एक महीने की आजादी दूगा, बशर्ते कि तुम वादा करो कि महीना बीतने पर लौट आओगे। उसके बाद इस पाताल-लोक के अंधकार में से मुझे प्रकाश की प्राप्ति होगी।"

बंदी मूर्तिवत् खड़ा रहा। उसकी जंजीर की खड़खड़ाहट अब सुनाई नही देती थी।

विराट बोला, "देखो, भगवान सबको देखते हैं। तुम क़सम खाओ कि महीनेभर मौन धारे रहोगे। मै तुम्हें चाबी और कपड़े दे दूंगा। चाबी तुम जेलर के दरवाजे के बाहर छोड़ जाना और आजाद होकर चले जाना। लेकिन इस शपथ से तुम बंधे रहोगे कि ज्योंही महीना बीते, इस चिट्ठी को महाराजा के पास

ले जाओ, जिससे मैं इस कारागार से मुक्त हो जाऊं और एक बार पुन: सचाई और न्याय के साथ फैसले दे सकू। तुम अपने सबसे बड़े इष्टदेव की सौगंध खाओ कि मेरी बात मानोगे ?"

कंपकंपाती आवाज में, मानो वह पाताल से उठकर आई हो, बंदी ने कहा, "मैं क़सम खाता हू।"

विराट ने उसकी हथकड़ी-बेड़ी खोल दीं और अपने कपड़े उतार डाले। बोला, "लो भाई, इन्हें पहन लो और लाओ, अपने कपड़े मुझे दे दो। देखो, अपने चेहरे को ढक लेना, जिससे जेलर समझे कि मैं हूं। मेरे बाल और दाढ़ी काट डालो, ताकि मुझे भी कोई पहचान न सके!"

थरथराते हुए अनिच्छापूर्वक बदी ने विराट के आदेश का पालन किया। विराट की निगाह ही कुछ ऐसी थी कि वह उसकी बात को टाल न सका। अनतर बहुत देर तक वह चुप-चाप खड़ा रहा। फिर विराट के चरणों में गिरकर उसने कहा, "स्वामी, मुझे यह बर्दाश्त नहीं कि मेरी जगह तुम कष्ट पाओ। हत्या तो मैंने की थी। मेरे हाथ लहू से लाल हो रहे हैं। तुम्हारा फैसला ठीक था।"

विराट बोला, "सुनो, उस फैसले की न्याय्यता का न तो तुम मूल्य आंक सकते हो और न मैं ही आंक सकता हूं। लेकिन जल्दी ही मुझे प्रकाश प्राप्त होगा। जाओ और जो कसम तुमने ली है, उसे पूरा करो। पूरनमासी के दिन मेरी यह चिट्ठी महाराजा को दे देना, जिससे मैं इस जेलखाने से छोड़ दिया जाऊं। समय परिपक्व होने पर मैं अपने कृत्यों को पहचान

सकूंगा और उसके बाद मेरे फैसले अन्याय से रहित होंगे। अब तुम जाओ।"

कैदी ने घुटने टेककर भूमि का चुंबन किया। तत्पश्चात् अंधेरे में द्वार बंद होने की ध्वनि हुई। सूराख में से होकर बत्ती की रोशनी एक बार पुनः दीवारों पर पड़ी और फिर रात के बाकी घंटे निस्तब्धता में विलीन होगये।

: ४ :

अगले दिन सवेरे विराट पर, जिसे किसीने भी नहीं पहचाना, सरेआम कोड़ों की मार पड़ी। नंगी पीठ पर जब पहला कोड़ा पड़ा तो उसके मुह से एक चीख निकल पड़ी; लेकिन उसके बाद वह चुप रहा। उसके दांत भिंचे थे। सत्तरवें कोड़े पर उसकी चेतना धुंधली पड़ गई और फिर उसे मरे हुए जीव की भांति वहां से ले जाया गया।

चेत हुआ तो वह अपनी कोठरी में पड़ा था। उसे लगता था, मानो वह जलते कोयले के बिस्तर पर पड़ा हो। लेकिन उसकी भौंहें ठण्डी थीं और उसे जड़ी-बूटियों की सुगंध आ रही थी। अधखुली आंखों से उसने देखा कि जेलर की पत्नी उसके पास बैठी है और धीरे-धीरे उसके माथे पर पानी डाल रही है। जब विराट ने ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा तो उसे पता चला कि उसकी आंखों में दया झलक रही है। शारीरिक यातना के उस क्षण में विराट ने अनुभव किया कि कष्ट की सार्थकता इसीम है कि उससे दूसरों में करुणा का आविर्भाव होता है। महिला की ओर देखकर वह मुस्कराया और अपनी पीड़ा को भूल गया।

अगले दिन उसमें इतनी सामर्थ्य पैदा होगई कि वह अपने पैरों खड़ा हो ले और उस कोठरी में धीरे-धीरे चल-फिर सके। हर कदम पर उसे ऐसा मालूम होता था कि उसके पैरों के नीचे एक नई दुनिया का निर्माण हो रहा है। तीसरे दिन उसके घाव भरने लगे और उसके शरीर और मस्तिष्क में बल का संचार

होने लगा। आगे अब वह निश्चल बैठा रहता था और समय की गणना छत में से टपकती पानी की बूदों के द्वारा करता रहता था। उस काल-कोठरी की महान निस्तब्धता अनेक अल्प क्षणों में विभक्त थी, जिसके योग से दिन और रात बनते हैं और हज़ारों दिन-रातों को पार करके हम जवानी और वृद्धावस्था को प्राप्त होते हैं। इस दरम्यान कोई भी विराट से बात करने नहीं आया और अंधेरा जैसे उसकी आत्मा में ही घर कर गया। फिर भी उसके अंतर मे स्मृतियों के अनेक निर्झर प्रवाहित होने लगे। कलकल निनाद करते उन निर्झरों ने अपने निर्मल जल से विचार-रूपी सरोवर को परिपूर्ण कर दिया, जिसमें विराट का समूचा जीवन दिखाई देने लगा। जिस चीज़ को उसने अबतक थोड़ा-थोड़ा करके अनुभव किया था, वह अब इकट्ठी होकर उसके सामने आगई। उसका मन अबतक कभी भी इतना निर्मल नहीं हुआ था, जितना कि उस जल में प्रतिबिंबित दुनिया को अपनी अंतर्दृष्टि से देखकर इस समय हुआ।

दिन-प्रतिदिन विराट का दृष्टिकोण स्पष्ट से स्पष्टतर होता गया। अंधकार में चीज़े रूप धारण करने लगीं और उनकी आकृति उसे साफ़ आखों के सामने दिखाई देने लगी। इसी प्रकार उसके अंतर में भी सबकुछ स्पष्ट हो उठा। आत्म-चिंतन से उसे जो सुखद आनंद प्राप्त हुआ वह, जैसे ही उसका हाथ उस चट्टानी गुफा की ऊंची-नीची दीवारों से क्रीड़ा करता, स्मृतियों के मायावी आलजाल में बिना भरमाये उसके नूतन विचारों के बीच किल्लोल करने लगा। उस अंधकार और

एकांत में उसे अपनी प्रकृति का ध्यान ही न रहा। अपने-आप से विमुख होकर विविध रूपों में व्याप्त परमात्मा की सत्ता के प्रति उसकी जागरूकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और अब वह अपनी इच्छा की गुलामी—मर-मरकर जीने और जी-जीकर मरने—से मुक्त होकर अपनी कल्पना द्वारा निर्मित जगत में पूर्ण स्वाधीनता के साथ विचरण करने लगा। शरीर से छुटकारा पाने के आह्लाद से उसकी हर घड़ी की चिंताएं मिट गईं। उसे ऐसा भास होने लगा, मानो प्रत्येक क्षण वह अंधकार में धरती की चट्टानों और काली जड़ों की ओर गहरा डूबता जा रहा है; लेकिन साथ ही उसमें एक नए जीवन का संचार भी हो रहा है। संभवतः उसका यह जीवन उस कीट का जीवन था, जो आंख मूदकर मिट्टी को कुरेदता है; या फिर शायद उस पौधे का-सा था, जो अपने तने के द्वारा ऊंचे बढ़ने का उद्योग करता है, या शायद उस शांत और निस्तब्ध चट्टान सरीखा, जिसे स्वयं अपनी आत्मा का कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

अठारह रात विराट अपनी इच्छा और जिंदगी की चख़-चख़ से बरी रहकर आत्म-चिंतन के अलौकिक रहस्य का आनंद लेता रहा। जिस चीज को उसने प्रायश्चित्त के रूप में ग्रहण कियाथा, वह उसे वरदान मालूम होने लगी और वह अनुभव करने लगा कि पाप और उसका प्रतिफल ज्ञान के प्रति सतत जागरूकता के मुक़ाबिले में कुछ भी नहीं है। लेकिन उन्नीसवीं रात को एक ऐसा विचार उसके मन में उठा कि उसकी चुभन से वह फड़फड़ाकर सोते से उठ बैठा। उसे लगा, वह विचार भभकते तकुए की भांति उसके दिमाग़ में घुस गया है। भय से उसका शरीर कांप

उठा और उसकी उंगलियां थर-थर कांपने लगीं, जैसे हवा में पत्तियां कांपती हैं। वह भयावह विचार था कि कहीं वह बंदी उसके साथ विश्वासघात न कर बैठे और पहले से ही और किसी शपथ में न बंधा हो! वह भूल गया तो? कहीं सालों तक, जबतक कि उसकी हड्डी-पसली सूख न जाय और निरंतर मौन से उसकी जीभ जकड़ न जाय, उसे जेल में ही न पड़ा रहने दे! इस विचार के उदय होते ही विराट के शरीर में जीवित रहने की इच्छा जाग्रत हो उठी और उसने उनसब आवरणों को विच्छिन्न कर डाला, जो उसे अबतक ढके हुए थे। समय की धारा फिर उसकी आत्मा में प्रवाहित होने लगी और उसके साथ ही भय, आशा और भौतिक संसार की समूची उथल-पुथल उसके अंदर पैदा हो गई। अब वह अपना ध्यान नाना रूपों में व्याप्त परमपिता परमात्मा पर केंद्रित न रख सका। अब वह केवल अपने ही बारे में सोच सकता था। उसकी आंखें दिन का प्रकाश देखने के लिए आतुर हो उठीं। उसकी देह, जो कठोर पाषाणों के बीच अबतक सिकुड़ी पड़ी रही थी, विस्तार पाने और कूदने और भागने की शक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा करने लगी। अपनी स्त्री, अपने बाल-बच्चों, अपने घर, अपनी संपत्ति तथा संसार के प्रभावशाली प्रलोभनों के, जिनके उपभोग के लिए पूर्ण जागरूकता तथा खून में गर्मी की आवश्यकता होती है, विचारों से उसका मस्तिष्क भर उठा।

अब से आगे समय ने, जो कि अबतक एक निस्तब्ध तलैया के मैले-कुचैले पानी की भांति, जिसमें विविध आकृतियां प्रतिबिंबित होती रहती है, चुपचाप पड़ा था, विराट के मस्तिष्क

में बहुत बड़ा रूप धारण कर लिया और उसकी धारा इतनी तेज़ी से बहने लगी कि उसके विरुद्ध ठहरने के लिए विराट को निरंतर संघर्ष करना पड़ा। वह चाहने लगा कि धारा उसके पैर उखाड़ दे और पानी पर उतराते वृक्ष की भांति उसे उसकी मुक्ति के ठिकाने पर पहुंचा दे। लेकिन प्रवाह तो उसके विरुद्ध था! प्रत्येक घड़ी जी-जान से वह धारा के विपरीत तैरने लगा। उसे ऐसा लगने लगा, मानो छत से गिरनेवाली बूंदों के बीच के समय का अंतर अब बहुत बढ़ गया है। अपनी गुफा में वह अब धैर्यपूर्वक पड़ा नहीं रह सकता था। इस विचार से कि वह पहाड़ आदमी उसे भूल जायगा और इस काल-कोठरी में उसे बरसों सड़ना पड़ेगा, विराट इतना अधीर हो उठा कि पिंजड़े के पंछी की भांति वह अपनी तंग कोठरी में बराबर इधर-से-उधर चक्कर काटने लगा। वहां की नीरवता से अब उसका गला घुटने लगा और वह दीवारों पर गालियों और शिकायत की बौछार करने लगा। वह अपनेको कोसता था, देवी-देवताओं को और महाराजा को गाली देता था। अपनी लहूलुहान उंगलियों को वह निष्ठुर चट्टान पर मारता था। और सिर झुकाकर दरवाजे से लगातार टक्कर लेता था। यह क्रिया तबतक चलती रहती जबतक कि वह बेहोश होकर गिर न पड़ता। होश आने पर वह फिर उठ खड़ा होता और फिर टक्कर लेने लगता।

अपने वंदी-जीवन के अठारहवें दिन से लेकर पूर्णिमा के आने तक विराट अत्यंत भयातुर रहा। खाना-पीना उसे अच्छा नहीं लगता था, कारण कि उसका शरीर चिंता के मारे

हैरान था। विचार करना उसके लिए असंभव हो गया था। हां, पानी की बूंदें जैसे-जैसे गिरती थीं, वह उन्हें होटों से गिनता रहता था, जिससे पहाड़-सा दिन कैसे ही कट जाय और दूसरा दिन प्रारंभ हो। इस बीच उसे तो मालूम भी नहीं हुआ, लेकिन उसकी कनपटी के पास के बाल सफेद हो गये।

: ५ :

तीसवें दिन बाहर कुछ शोर हुआ और शांत हो गया। तत्पश्चात् सीढ़ियों पर पैरों की आहट सुनाई दी। दरवाज़ा खुला और प्रकाश भीतर आया। अंधकार में आवृत विराट के आगे महाराज खड़े थे। स्नेहपूर्ण आलिंगन के साथ महाराज ने उसका अभिवादन किया और कहा, "तुम्हारी करनी मुझे मालूम हो गई है और वह हमारे बाप-दादों के इतिहासों में उल्लिखित कृतियों की अपेक्षा कहीं अधिक महान है। हमारे जीवन में वह सितारे की मानिंद चमकेगी। आगे आओ, जिससे प्रभु की कृपा से तुम प्रकाशमान हो उठो और आनंद से पुलकित लोग एक सदाचारी और सच्चे आदमी के दर्शन कर सकें।"

विराट ने हाथ से अपनी आंखों पर छाया कर ली, क्योंकि आदत न रहने से प्रकाश की चौंध उसके लिए कष्टकर थी। एक शराबी की भांति डगमगाता वह उठ खड़ा हुआ। नौकरों को उसे सहारा देना पड़ा। द्वार पर जाने से पहले उसने कहा, "राजन्, आपने मुझे सदाचारी और सच्चा आदमी कहा है; लेकिन अब मैं अच्छी तरह से जानता हूं कि जो दूसरे पर निर्णय देता है, वह अन्याय और भयंकर भूल करता है। इस पाताल-लोक में अब भी कष्ट-पीड़ित लोग हैं, जो कि मेरे फ़ैसले की वजह से यहां पड़े हैं। अब पहली बार मुझे पता चला है कि उन्हें कितनी पीड़ा होती है और मुझे मालूम हुआ है कि बदला लेने का क़ानून ही अपने-आपमें गलत है। इन बंदियों

को मुक्त कर दीजिये और कह दीजिये कि यहां से चले जायं; क्योंकि उनका जयजयकार मुझे लज्जित करता है।

महाराजा ने संकेत किया और उनके सेवकों ने भीड़ को तितर-बितर कर दिया। एक बार फिर शांति छा गई। तब महाराजा ने कहा, "तुम्हारा आसन मेरे महल को जानेवाली सीढ़ियों के बुर्ज पर था; लेकिन यातनाओं की अनुभूतियों के कारण पहले के न्यायाधीशों की अपेक्षा तुम अधिक बुद्धिमान हो गये हो, सो अब से तुम मेरे साथ बैठोगे, जिससे मैं तुम्हारी वाणी को सुन सकूं और तुम्हारी न्यायमत्ता से लाभ उठा सकूं।"

आवेदन के रूप में विराट महाराजा को प्रणाम करके बोले, "महाराज, मुझे न्यायाधीश के पद से मुक्त कर दीजिये। अब जब मैं यह अनुभव करने लगा हूं कि कोई भी किसीके बारे में निर्णय देने का अधिकारी नहीं है, तब सही निर्णय देना मेरे बस के बाहर है। दण्ड देना परमात्मा के हाथ की बात है, मनुष्य के हाथ की नहीं। भाग्य के मार्ग में जो भी रोड़े अटकाता है, वह अपराध करता है। मैं तो पाप-मुक्त होकर जीवन-यापन करना चाहता हूं।"

"अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।" महाराजा ने उत्तर दिया, "मेरे प्रधान न्यायाधीश होने के बजाय तुम मेरे प्रधान सलाहकार होगे और मेरे लिए शांतिकाल और युद्ध की समस्याओं पर विचार किया करोगे तथा कर आदि लगाने के मामलों में मुझे सलाह दिया करोगे, जिससे मेरे सभी कार्य तुम्हारी बुद्धिमत्ता से संचालित हो सकें।"

विराट फिर महाराजा को नमस्कार करके बोले, "स्वामी,

मुझे कोई सत्ता न दीजिये, कारण की सत्ता का परिणाम कर्म होता है और कौन-सा कर्म ऐसा है जो कि सही है और भाग्य के निर्णय के अनुकूल है ? यदि मैं युद्ध की सलाह देता हूं, तो मैं मृत्यु के बीज बोता हूं। मेरे मुंह से जो कुछ निकलता है, उससे कर्म पैदा होता है और मेरे प्रत्येक कर्म का कुछ-न-कुछ परिणाम होता है, जिसे मैं पहले से नहीं देख सकता। केवल वही व्यक्ति न्यायपूर्ण और नेक हो सकता है, जो सब प्रकार के कर्म से मुक्त है और अकेला है। इस एकांतवास में बिना किसी से बोले-चाले मैं ज्ञान के जितना निकट और पाप से जितना दूर रहा हूं उतना पहले कभी नहीं रहा। मुझे प्रसन्नतापूर्वक अपने घर पर रहने की आज्ञा दीजिये। परमात्मा की आराधना के अतिरिक्त मुझे कोई भी काम न हो और इस प्रकार मैं पाप से बचा रहूं।"

महाराजा बोले, "तुम्हारी सेवाओं से वंचित होते मुझे दुःख तो होता है, लेकिन किसी साधु-संत से तर्क करने या किसी नेक और ईमानदार आदमी को उसकी इच्छानुसार चलने से रोकने का दुस्साहस कौन कर सकता है ? जैसे ठीक समझो, रहो। मेरे राज्य के लिए यह बड़े गौरव की बात होगी कि उसकी सीमा के भीतर एक ऐसा व्यक्ति निवास करता है, जो पाप-मुक्त है"

बंदीगृह के द्वार पर उन दोनों ने एक-दूसरे से विदा ली। विराट सूर्य की धूप से चिलकती हवा की सुगंधि का आनंद लेता हुआ अकेला घर की ओर चला। अपना हृदय उसने कभी भी इतना हल्का अनुभव नहीं किया था जितना कि अब, जबकि

वह सब प्रकार के कर्म के बंधन से छूट गया था । उसके पीछे नंगे पैरों की हल्की आवाज़ आ रही थी और जब वह पीछे मुड़ा तो देखता क्या है कि वही अपराधी चला आ रहा है, जिसका दण्ड उसने अपने ऊपर ले लिया था। उस पहाड़ी आदमी ने न्यायाधीश की पदरज मस्तक पर लगाई और सहमते हुए उल्टे पैरों लौट गया। विराट ने जबसे अपने मृत भाई की चमकीली आंखें देखी थीं तब से अब आकर पहली बार मुस्कराया और प्रसन्न हृदय से घर के भीतर प्रविष्ट हुआ।

: ६ :

घर लौटने के पश्चात् विराट का समय पूर्ण आनंद के साथ बीतने लगा। अपनी जाग्रत अवस्था में वह परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता था कि हे प्रभु, मुझे स्वर्ग के प्रकाश के ही दर्शन देना, छाया के नहीं। मुझे इस दुनिया के नाना रंग दिखाई दें और इस सुदर भूमि की सुगध का रस प्राप्त हो तथा मैं उस मधुर संगीत को सुनूं, जिससे प्रत्येक प्रभात सजीव हो उठता है। उसे मालूम होता था कि वह जो खुली हवा में सांस लेता है और जहां जी में आता है, घूमता-फिरता है, वह सब परमात्मा की नवीन और महान देन है। सात्विक स्नेह के साथ वह अपने शरीर पर तथा अपनी स्त्री के मुलायम गात पर और बच्चों की मजबूत देह पर हाथ फेरता था और हर्षपूर्वक अनुभव करता था कि विभिन्न रूप में भगवान उनमें से प्रत्येक में व्याप्त हैं। जब वह देखता कि अपने जीवन की परिधि को लांघकर उसने किसी दूसरे अनजाने व्यक्ति के भाग्य के साथ हस्तक्षेप नहीं किया और न अदृश्य भगवान के असंख्य मूर्तिमान रूपों में से ही किसीपर आक्रमण किया तो अभिमान से उसकी आत्मा आनंद-विभोर हो उठती। सबेरे से सांझ तक वह ज्ञान की पुस्तकें पढ़ता और तरह-तरह से उपासना करता रहता—एकांत में चिंतन, आत्मा के साथ तल्लीनता, दीनों के साथ उपकार और उत्सर्ग की प्रार्थना। वह प्रसन्न-चित्त रहता। उसकी वाणी उसके छोटे-से-छोटे सेवक के प्रति भी मधुर रहती

और उसके कुटुंबी-जन उसके प्रति अब जितने अनुरक्त थे, उतने पहले कभी नहीं थे। ज़रूरतमंदों को वह सहायता देता था और कष्ट-पीड़ितों को दिलासा। लोगों के समुदाय-के-समुदाय पीठ-पीछे उसके कल्याण की कामना करते थे। अब कोई भी उसे निपुण तलवार चलानेवाला अथवा न्याय का स्रोत नहीं कहता था, क्योंकि अब वह अच्छी सलाह देनेवाला बन गया था। उसके पड़ोसी ही नहीं, सब लोग उसकी सलाह लेने के लिए आते थे। यद्यपि अब वह उस भूमि पर न्यायाधीश नहीं था, फिर भी दूर-दूर से लोग अपना झगड़ा निबटाने के लिए उसके पास आते थे और उसकेफैसले को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार कर लेते थे। विराट को इससे खुशी होती थी। वह अनुभव करता था कि आदेश देने की अपेक्षा सलाह देना और फ़ैसला देने की अपेक्षा बीच-बिचाव करा देना कहीं अच्छा है। अब चूंकि दूसरे के भाग्य पर ज़बरदस्ती शासन करने अथवा बहुतों के भाग्य-विधाता बनने का उसके हाथ कोई अधिकार नहीं रहा था, उसे ऐसा आभास होता था कि उसकी जिंदगी दोष-मुक्त है। इस प्रकार अपने जीवन के उस सुनहले प्रहर में वह खूब उल्लास के साथ रहता था।

तीन साल गुजरे, फिर तीन और। वे ऐसी सफ़ाई से बीत गये, जैसे सुख का दिन बात-की-बात में बीत जाता है। विराट की प्रकृति कोमल से कोमलतर होती गई। जब कोई झगड़ा निबटारे के लिए उसके पास आता था तब उसे यह समझने में बड़ी कठिनाई होती थी कि आखिर इस दुनिया में इतना संघर्ष क्यों है और लोग क्यों स्वामित्व के लिए ईर्ष्यालु बनकर एक-

दूसरे का गला घोंट रहे हैं, जबकि जीवन के विस्तार के लिए इतनी जगह उनके लिए खुली पड़ी है और वे अच्छी तरह से जीवित रहकर जीवन का आनंद ले सकते हैं ! उसे किसीसे ईर्ष्या नहीं थी, न किसीको उससे। विराट का घर मानो जीवन-रूपी सागर के बीच शांति के द्वीप में स्थित था, जिसे वासनाओं की लहरें या कामुकता की धाराएं छू ही नहीं पाती थीं।

इस शांति-काल के छठवें वर्ष में एक दिन संध्या को विराट सोने चला गया था कि उसे किसीकी चीख और कोड़े पड़ने की आवाज़ सुनाई दी। अपने बिस्तर से वह उठ बैठा और उसने देखा कि उसके लड़के एक गुलाम की बुरी तरह खबर ले रहे हैं। ज़मीन पर बिठाकर चमड़े के हंटर से उसकी इतनी ठुकाई कर रहे थे कि उसकी देह से खून बह निकला था। गुलाम ने निगाह गाड़कर विराट की ओर देखा और एक बार फिर विराट को लगा, मानो वह अपने उसी भाई की आंखें देख रहा है, जिसकी उसने अपने हाथों हत्या कर डाली थी। जल्दी से आगे बढ़कर उसने कोड़ा चलाते लड़के की बांह पकड़ ली और पूछा कि किस्सा क्या है ?

लड़कों ने जो जवाब दिये उससे विराट को मालूम हुआ कि इस गुलाम का काम चट्टानी झरने से लकड़ी के डोलों में पानी भर-भरकर घर लाने का था; लेकिन कई बार वह देर से घर पहुंचा और कह दिया कि दुपहरी की धूप के मारे थक गया था। हर बार उसे दण्डित किया गया। कल और दिन की अपेक्षा उसकी अधिक मरम्मत हुई तो वह चुपचाप घर से निकल भागा। लड़कों ने घोड़ों पर उसका पीछा किया और जब वह

नदी पार कर चुका था, उसे पकड़ लिया। इसके बाद रस्सी से उन्होंने उसे एक घोड़े की जीन से बांध लिया, जिससे कुछ घसिटता और कुछ दौड़ता वह घर आया। उसके पैर छलनी हो गये थे। अब वे उसकी तथा दूसरे गुलामों की भलाई की खातिर, जो कांपते हुए उसे पिटते देख रहे थे, आदर्श दण्ड दे रहे थे।

विराट ने गुलाम की ओर देखा। उसकी आंखें ऐसे फटी हुई थीं, जैसे जल्लाद के मृत्यु-प्रहार की प्रतीक्षा करनेवाले पशु की फटी होती है। उसकी काली आंखों के पीछे विराट को उसी भय का अनुभव हुआ, जिसे वह एक बार स्वयं महसूस कर चुका था।

"छोड़ दो इस आदमी को।" विराट ने अपने लड़के से कहा, "अपराध की सजा इसे मिल चुकी।"

गुलाम ने स्वामी के चरणों के सामने की रज का चुम्बन किया। यह पहला अवसर था, जब पुत्र अपने पिता से रुष्ट होकर विदा हुए। विराट अपने कमरे में चला गया और उसने हाथ-मुंह धोया। ठंडे पानी के स्पर्श से अचानक उसे ज्ञान हुआ कि वह क्या कर रहा है और उसने अनुभव किया कि चट्टान के कारागार को छोड़ने के बाद पहली बार वह निर्णायक बना है और उसने दूसरे के भाग्य में हस्तक्षेप किया है।

छः वर्ष में प्रथम बार उस रात उसे नींद नहीं आई। अंधकार में पड़े-पड़े उसने कल्पना द्वारा उस गुलाम की भयंकर आंखें (या वे उसीके वध किये हुए भाई की ही आंखें थीं!) देखीं और उसे अपने पुत्रों की क्रोधभरी मुद्रा दिखाई दी। वह बार-बार अपने से पूछने लगा कि क्या उसके बच्चों ने इस

नौकर के साथ अन्याय नहीं किया ? कर्त्तव्य की साधारण अवहेलना पर उसके घर के आंगन की मिट्टी खून से तर हो गई ! जरा-सी चूक पर एक जीवित व्यक्ति के कोड़े लगाये गये ! इस अपराध से विराट को उन कोड़ों की मार की अपेक्षा कहीं ज्यादा चोट लगी, जिन्होंने उसकी पीठ को बिच्छुओं के काटने से भी अधिक पीड़ा पहुंचाई थी। यह ठीक था कि शाम को जो दण्ड उसके सामने दिया गया था, वह किसी कुलीन को नहीं, एक गुलाम को दिया गया था, जिसका शरीर राजसी क़ानून के अनुसार उसके पैदा होने की तिथि से ही उसके स्वामी के अधिकार में था; लेकिन क्या परमात्मा की आंखों में राजा का यह क़ानून ठीक था ? क्या ईश्वर की निगाह में यह सही हो सकता है कि एक व्यक्ति का शरीर दूसरे के पूर्ण अधिकार में हो ? और क्या वह व्यक्ति परमात्मा के सामने निर्दोष ठहराया जा सकता है, जो एक गुलाम की जिंदगी को चोट पहुंचाये या उसे नष्ट कर दे ?

विराट बिस्तर से उठा और उसने बत्ती जलाई, ताकि संतों के ग्रंथों में इस संबंध में कोई आदेश ढूढ़ निकाले । निश्चय ही वर्णों और संपत्तियों को लेकर आदमी-आदमी के बीच उसे भेद दिखाई दिया, लेकिन नाना प्रकार के जीवों की कृतियों में कहीं भी उसे प्रेम की मांगों की पूर्ति के संबंध मे कोई अंतर नहीं मिला । ज्ञान का रस वह अधिक-से-अधिक उत्सुकतापूर्वक प्राप्त करता गया, कारण कि उसकी आत्मा कभी भी एक समस्या के प्रति इतनी अधिक जागरूक नहीं हुई थी । लेकिन अचानक एक क्षण के लिए प्रकाश की लौ अपने स्थान से हटी

और फिर बुझ गई। जब अंधकार उसके और दीवारों के बीच छा गया तब अनायास विराट को पता चला कि जिस परिधि को उसकी आंखें अंधेरे में ढूंढ़ रही हैं, वह उसके सुपरिचित कमरे की परिधि नहीं है, बल्कि कुछ समय पूर्व का वह कारागार है, जहां भयभीत होकर उसे निश्चयपूर्वक यह पता चला था कि स्वाधीनता मनुष्य का सबसे बड़ा अधिकार है और किसीको भी हक़ नहीं कि वह दूसरों को जेल में ठेल दे, चाहे वह सजा उम्रभर के लिए हो, या सिर्फ एक साल के लिए। लेकिन फिर भी विराट ने अपनी इच्छा के अदृश्य कारागार में इस गुलाम को बंदी कर रखा था! अपने फैसलों से उसने उसे जकड़ रखा था, जिससे कि वह आज़ादी की तरफ एक कदम भी न रख सके। ज्योंही वह बैठकर सोचने लगा, उसके विचार स्पष्ट होते गये। उसे लगा कि इस प्रकार विचार करने से उसकी बुद्धि खुलती जा रही है और फिर किसी अदृश्य स्थान से प्रकाश आकर उसके अंदर प्रविष्ट हो गया। अब उसे ज्ञात हुआ कि वह अभी भी इस बात में दोषी है कि उसने अपने संगी-साथियों को अपनी इच्छा का गुलाम बना रखा है और उस कानून के जरिये उसका नाम गुलाम रख लेने दिया है, जिसकी उत्पत्ति दुर्बल मानव के द्वारा हुई है, परमात्मा के आदेश से नहीं। विराट ने झुककर प्रार्थना की।

"ओ, सहस्रों रूप वाले प्रभु, मैं तुझे धन्यवाद देता हूं कि तू अपने समस्त रूपों में से मेरे लिए दूत भेजता है कि वे मुझे अपराधों से उबार लें और तेरी इच्छा के मार्ग पर चलाकर मुझे सदा तेरे निकट ले जायं। हे प्रभु, मुझे शक्ति दे, जिससे

में अपने अमर भाई की आंखों में उन कल्याणकारी दूतों को पह-चान सकूं। इस भाई की आत्मा निरंतर मेरा अनुगमन करती है और मेरी आंखों से देखती है। उसके कष्टों से मैं स्वयं पीड़ित होता हूं, जिससे मैं अपने जीवन को पवित्र बना सकूं और निर्दोष होकर सांस ले सकूं।"

विराट का चेहरा फिर प्रसन्न हो उठा। उसकी आंखों से उदासी दूर हो गई और वह आकाश में टिमटिमाते और स्वागत करते तारों तथा सवेरे की ताजगी देनेवाली हवा का आनंद लेने के लिए रात में ही घर से निकल पड़ा। बाग़ में होता हुआ वह नदी पर पहुंचा। पूर्व में जैसे ही सूर्य का उदय हुआ, वह पवित्र जलधारा में कूद पड़ा। अनंतर अपने कुटुबीजनों से मिलने के लिए घर लौट आया। प्रभात की प्रार्थना के लिए वे सब इकट्ठे हो गये थे।

: ७ :

मधुर मुस्कान के साथ विराट ने कुटुंबीजनों का अभिवादन किया और स्त्रियों को वहां से चले जाने का संकेत करके अपने लड़कों से बोला, "तुम जानते हो कि बरसों से मैं सिर्फ एक ही बात की चिंता कर रहा हूं और वह यह कि मैं ईमानदार और नेक आदमी बन जाऊं और इस पृथ्वी पर पाप से बचकर ज़िंदगी बसर करूं। कल मेरे घर की धरती खून से तर-बतर हो गई। खून भी किसका? एक जिंदा आदमी का! मैं चाहता हूं कि खून बहाने के इस अपराध से मैं निर्दोष हो जाऊं और मेरे घर की छत के नीचे जो भूल हुई है, उसका प्रायश्चित्त करूं। जिस गुलाम को मामूली से अपराध के लिए इतनी सजा दी गई, वह इसी घड़ी से आजाद हो जायगा। जहां चाहे, जाय, ताकि कयामत के दिन तुम्हारे और मेरे खिलाफ ईश्वर के दरबार में वह गवाही न दे।"

लड़के चुप थे और विराट को अनुभव हुआ कि चुप रह-कर वे उसे विरोध की निगाह से देख रहे हैं।

वह बोला, "तुमने कोई जवाब नहीं दिया। मैं तुम्हारी बात सुने बिना कुछ भी नहीं करना चाहता।"

"तुम एक अपराधी को आजादी देना चाहते हो, दण्डित करने की अपेक्षा इनाम देना चाहते हो!" सबसे बड़े लड़के ने कहा, "हमारे घर में बहुत-से नौकर हैं। इसलिए एक का जाना हमें खलेगा नहीं; लेकिन तुम जो कुछ कर रहे हो, उसका

परिणाम अच्छा नहीं होगा। अगर तुम इस आदमी को मुक्त कर दोगे तो फिर दूसरे आदमी जाना चाहें तो उन्हे कैसे रोककर रख सकते हो ?"

"यदि वे जाना चाहेंगे तो मैं उन्हें चले जाने दूंगा। मैं किसीका भाग्य-विधाता नहीं बनूंगा । जो भी कोई दूसरे के भाग्य का फैसला करता है, वह अपराधी है।"

"तुम तो कानून के बंधन ढीले कर रहे हो।" दूसरे लड़के ने कहा, "ये गुलाम हमारे हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि हमारी ज़मीन हमारी है और उसपर उगनेवाले पेड़ और उन पेड़ों के फल सब हमारे है। चूकि वे तुम्हारी सेवा करते हैं, वे तुमसे बंधे हुए हैं और तुम उनसे बधे हुए हो। तुम जिस चीज़ को तोड़ रहे हो वह परंपरागत है और हज़ारों वर्षों से चली आ रही है। गुलाम अपनी जिंदगी का खुद मालिक नहीं है, बल्कि अपने मालिक का दास है।"

"परमात्मा की ओर से हमें केवल एक ही अधिकार है, वह है जीने का। वह अधिकार सभीको प्राप्त है। तुमने अपनी बात मुझे बताकर अच्छा ही किया, क्योंकि जब मैं यह सोच रहा था कि मै अपराध से अपनेको बचा रहा हूं, मै अंधकार में था। इन तमाम सालों मे मैं दूसरों की ज़िंदगी छीनता रहा हूं। अब अंत मे मुझे स्पष्ट दिखाई देता है कि ईमानदार आदमी कभी भी मनुष्यों को जानवरों के रूप में परिणत नहीं कर सकता। मैं सब गुलामों को मुक्त कर दूंगा, जिससे कि मैं उनके प्रति अपराध से अपनेको बरी कर सकूं।"

विरोध से लड़कों की त्यौरियां चढ़ गई। सबसे बड़े ने हठ-

पूर्वक कहा, "यह तो बताओ कि धान की खेती को सूखने से बचाने के लिए कौन सिचाई करेगा ? कौन ढोरों को चराने ले जायगा ? तुम्हारी सनकों के कारण क्या हम लोग नौकर बन जायं ? जिदगी भर तुमने तो हाथ भी नहीं हिलाया और न कभी इस बात की चिंता की कि तुम्हारी जिंदगी दूसरों की मेहनत पर चलती है। जिस बिस्तर पर तुम पड़े रहते थे, उसे दूसरे तैयार करते थे और जबतक तुम सोते थे, एक गुलाम तुम्हारी हवा करता रहता था। अब तुम अचानक सब गुलामों को निकाल बाहर किये दे रहे हो, जिससे तुम्हारे बेटे, तुम्हारे ही खून से पैदा हुए लोग, काम में पिसें। क्या तुम चाहते हो कि बैलों के जुए निकालकर हम उन्हें भी अलग कर दें और स्वयं हल को खींचें, जिससे वह आर लगने से छुटकारा पालें ? आदमियों की तरह इन मूक पशुओं को भी भगवान ने जीवन दिया है। आज जो व्यवस्था है, उसमें दख़लंदाजी न करो, क्योंकि वह भी परमात्मा की ओर से है। धरती अनिच्छापूर्वक फल देती है, ताकत के ज़ोर पर। संसार का कानून बल है और हम उससे बच नहीं सकते।"

"लेकिन मैं बचूंगा। बल शायद ही कभी ठीक होता है। मैं अपनी ज़िंदगी सचाई के साथ बिताना चाहता हूं।"

"सबकुछ बल के अधीन होता है, चाहे वह आदमी पर स्वामित्व हो या पशुओं पर अथवा कि इस भूमि पर। जहां आप स्वामी हैं, वहां आपके लिए आवश्यक है कि आप विजेता भी हों। जिसके हाथ स्वामित्व है, वह मनुष्यों के भाग्यों के साथ बंधा है।"

"लेकिन मैं उन तमाम चीज़ों से अपनेको बरी कर दूंगा, जो मुझे पाप से बांधती हैं। इसलिए मैं तुम्हें आदेश देता हूं कि गुलामों को छोड़ दो और जरूरी काम अपने हाथ करो।"

लड़कों की आंखें चमक उठीं और वे मुश्किल से अपना गुस्सा रोक सके। सबसे बड़े ने उत्तर दिया, "तुमने कहा था कि तुम किसी भी व्यक्ति की इच्छा पर दबाव नहीं डालना चाहते। तुम अपने नौकरों को भी आज्ञा नहीं दोगे, ताकि तुम पाप के भागी न बनो, लेकिन तुम हमसे कहते हो कि यह करो, वह करो और हमारे जीवन में हस्तक्षेप करते हो। बोलो, किस तरह तुम परमात्मा और आदमी की निगाह में यह सही कर रहे हो ?"

विराट बहुत देर तक खामोश रहा। जब उसने निगाह ऊपर उठाई तो देखा कि लड़कों की आंखों में लालच की लौ जल रही है। उसकी आत्मा दुःखित हो उठी। धीरे-से बोला, "तुमने मुझे एक सबक सिखाया है। यह मेरा काम नहीं है कि मैं तुमपर किसी प्रकार का दबाव डालूं। घर और दूसरी चीज़ों को तुम ले लो और जैसे मुनासिब समझो, आपस में बटवारा कर लो। इन चीज़ों में मेरा कोई भाग या भाग्य नहीं होगा और न उस पाप में, जो उनके द्वारा होगा। तुमने ठीक ही कहा है कि जो शासन करता है, वह दूसरों की स्वतंत्रता का अपहरण करता है; लेकिन सबसे बुरी बात तो यह कि वह स्वयं अपनी आत्मा को गुलाम बनाता है। जो पाप से बचकर रहना चाहता है, उसे घरबार के स्वामित्व और दूसरे की भाग्य-व्यवस्था से मुक्त रहना चाहिए। दूसरों की मजदूरी पर उसकी गुज़र-बसर

नहीं होनी चाहिए और उसे उन वस्तुओं को ग्रहण नहीं करना चाहिए, जिनके उत्पादन में दूसरों ने पसीना बहाया हो। स्त्रियों के साथ भोग-विलास तथा संतोषजनित आलस से उसे दूर रहना चाहिए। केवल वही व्यक्ति, जो अकेला रहता है, परमात्मा के साथ रहता है; कर्मठ व्यक्ति को ही परमात्मा की अनुभूति होती है। गरीबी ही परमात्मा को पूर्णतया अनुभव करती है। मेरे लिए ज़रूरी है कि अपनी भूमि के निकट रहने की अपेक्षा भगवान के निकट रहूं। कारण, मैं पाप से बचकर रहना चाहता हूं। घर-संपत्ति ले लो और शांतिपूर्वक उसका बटवारा कर लो।"

विराट मुड़ा और लड़कों को छोड़कर चल दिया। उसके लड़के भौंचक्के-से खड़े रहे। उनका लालच पूरा हुआ, इसका उन्हें सुख तो था, लेकिन अपने अंतर में वे बड़े लज्जित थे।

: ८ :

रात होने पर विराट घर से निकल पड़ने के लिए तैयार हुआ। साथ में लो उसने लाठी, एक भिक्षा का पात्र, काम करने के लिएं कुल्हाड़ी, भोजन के लिए थोड़े से फल और कुछ ताड़-पत्र, जिनपर संतों की वाणी खुदी थी। घुटनों ऊपर कपड़े करके, पत्नी-बच्चे अथवा घर के किसी भी व्यक्ति से विदाई लिए बिना उसने घर छोड़ दिया।

सारी रात चलकर वह उस नदी के किनारे आया, जिसमें उसने अपनी चेतन अवस्था की भयंकर घड़ी में एक बार अपनी तलवार फेंक दी थी। घाट से उसने नदी पार की और दूसरे किनारे-किनारे धारा से ऊपर की ओर चला, जहां आदमी का नामो-निशान भी नहीं था और जहां की धरती की कभी जुताई नहीं हुई थी।

दिन निकलने पर वह एक ऐसे स्थान पर पहुंचा, जहां एक पुराने आम के पेड़ पर बिजली गिर गई थी और उसकी आग से जंगल का कुछ हिस्सा साफ हो गया था। यहांपर जल की धारा एक बड़ा मोड़ लेकर धीरे-धीरे बह रही थी और उसमें अनगिनत चिड़ियां निडर होकर पानी पी रही थीं। इस प्रकार सामने नदी का सुदर दृश्य था और पीछे पेड़ों की घनी छाया। धरती पर जगह-जगह जंगली पेड़ थे, जिनमें से कुछ बिजली की वजह से नष्ट हो गये थे। कुछ छोटे-छोटे पौधे उग रहे थे। विराट ने जंगल की इस साफ, निर्जन भूमि के बारे में सोचा और

निश्चय किया कि यहींपर अपनी झोंपड़ी बनावे। अपनी बाकी जिंदगी को वह अपने संगी-साथियों से दूर और पाप से मुक्त रहकर चिंतन में बिता देगा।

झोंपड़ी बनाने में उसे पांच दिन लगा गये; क्योंकि उसके हाथ काम करने के आदी नहीं थे। वह पूरी हो गई तब भी उसे हर रोज कसकर काम करना पड़ता था। भोजन के लिए फलों की खोज करनी पड़ती। जंगल की घासपात को भी, जो कि निरंतर उगती रहती थी, साफ रखने के लिए मेहनत की ज़रूरत थी। भूखे चीते रात को जंगल में घूमते रहते थे। उनसे रक्षा के लिए कंटीली लकड़ियों की बाड़ भी जरूरी थी। आदमियों का कोलाहल वहां कभी नहीं सुनाई दिया, न उसकी एकाग्रता ही में कभी विघ्न पड़ा। नदी के जल की भांति शांतिपूर्वक उसके दिन कटने लगे और सतत प्रवाहित झरने की भांति उसमें नवीन रस का संचार होने लगा।

चिड़ियों ने देखा कि आगंतुक चुपचाप काम में लगा रहता है। उससे उन्हें भयभीत होने की जरूरत महसूस नहीं हुई और थोड़े ही दिनों में उन्होंने झोंपड़ी की छत में अपने घोंसले बना लिये। विराट बड़े-बड़े फलों के बीज बिखेर देता था और उनके भोजन के लिए फल रख देता था। धीरे-धीरे मित्रता बढ़ती गई और वे उसके बुलाने पर ताड़वृक्षों से फुदककर नीचे आ जाने लगीं। विराट उनके साथ खेलने लगा और चिड़ियां भी बिना किसी डर के उसकी पकड़ में आ जाने लगीं। एक दिन जंगल में उसे एक छोटा-सा बंदर जमीन पर पड़ा मिला। उसका पैर टूट गया था और वह बच्चे की तरह बिलख रहा था। विराट ने उसे

उठा लिया और अपनी झोंपड़ी में ले आया। जब वह अच्छा हो गया तो उसे पाल लिया। बंदर पालतू हो गया और मजे में उसकी नकलें और भक्तिपूर्वक सेवा करने लगा।

इस प्रकार विराट के चारों ओर जीवित पशु-पक्षी थे, लेकिन इस बात को वह कभी भी नहीं भूला कि आदमियों की तरह पशुओं में भी हिंसा और बुराई के भाव मौजूद रहते हैं। वह देखता था कि किस प्रकार घड़ियाल एक दूसरे को काटते हैं और गुस्से में भरकर एक-दूसरे का पीछा करते हैं; किस प्रकार नदी से चिड़ियां मछलियां ले आती हैं और किस प्रकार सांप कुंडली भरकर चिड़ियों को हड़प जाते हैं! प्रलय देव ने दुनिया को विनाश की भयंकर जंजीर से जकड़ रखा है, इस नियम की सचाई को उसे स्वीकार करना ही पड़ा। फिर भी यह अच्छा ही था कि वह उन संघर्षों का दर्शक-मात्र था और उस विनाश और मुक्ति के विशाल चक्र में वह निर्दोष होकर रह रहा था।

एक वर्ष और कई महीनों तक उसने आदमी की शक्ल भी नहीं देखी। फिर एक दिन ऐसा हुआ कि एक शिकारी हाथी का पीछा करता हुआ नदी के उस स्थान पर आया, जिसके दूसरी ओर हाथी ने पानी पिया था। यहां उसे एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई दिया। संध्या के सुनहले प्रकाश में एक सफेद दाढ़ीवाला आदमी अपनी छोटी-सी कुटिया के सामने बैठा था। चिड़ियां उसके सिर पर चहचहा रही थीं और एक बंदर उसके पैरों में बैठा पत्थर से उसके लिए अखरोट तोड़ रहा था। वह आदमी पेड़ की फुनगी की ओर देख रहा था, जहां रंग-बिरंगे बहुतसे तोते टें-टें कर रहे थे। जब उसने इशारा किया तो उसके हाथों

पर आकर बैठ गये । शिकारी ने सोचा कि वह किसी संत के दर्शन कर रहा है, जिसके विषय में लिखा है—"पशु-पक्षी उससे आदमी की बोली में बात करते थे और फूल उसके पैरों तले उगते थे । अपने होंटों से वह तारों को तोड़ सकता था और फूंक मारकर चद्रमा को उड़ा सकता था । "वह शिकारी शहर की ओर तेज़ी से चला कि लोगों को बतावे कि उसने क्या दृश्य देखा है ।

अगले दिन नदी के उस पार किनारे पर उस आश्चर्य को देखने के लिए बहुत-से लोग आ पहुचे । भीड़ तेजी से बढ़ती गई और अंत में एक आदमी ऐसा भी आया, जो विराट को पहचानता था । खबर चारों ओर फैलते-फैलते राजा के कानों में भी पहुंची, जिन्हें अपने स्वामि-भक्त सेवक के खोने का बड़ा दु:ख था । महाराजा ने एक नावों बेड़ा तैयार करने का आदेश दिया, जिसमें अट्ठाईस खेवैया थे । उन्होंने बड़ी ताकत लगाकर पतवार चलाये और अंत में बेड़ा विराट की झोंपड़ी के सामने आ पहुंचा । महाराजा के लिएं कालीन बिछा दिया गया । वह उतरे और उस तपस्वी के निकट गये । आठ महीने से विराट ने आदमी की बोली नही सुनी थी । मुश्किल से उसने अपने अतिथि का अभिवादन किया और प्रजा जिस प्रकार अपने शासक को प्रणाम करती है, उस प्रकार प्रणाम करना वह भूल गया । बोला, "महाराज, आपका आना कल्याण-कारी हो ।"

महाराजा ने उसे छाती से लगा लिया ।

"वर्षो से पूर्णता की ओर तुम्हारी प्रगति को मै ध्यानपूर्वक देख रहा हूं और अब मैं नेकी के दुर्लभ चमत्कार को देखने

आया हूं, जिससे मुझे यह पता चल जाय कि नेक आदमी किस प्रकार रहता है!"

विराट ने सिर झुका लिया। बोला, "मेरा समूचा ज्ञान यह है कि मैंने आदमियों के बीच रहना भुला दिया है, जिससे मैं सब पापों से बचकर रह सकूं। एकांतवासी आदमी अपनेको ही सीख दे सकता है, दूसरों को नहीं। मैं नहीं जानता कि मैं जो कुछ कह रहा हूं, वह बुद्धिमानी है। मैं यह भी नहीं जानता कि मैं जो कुछ अनुभव कर रहा हूं, वह आनंद है। मेरे पास सलाह देने या सिखाने के लिए कुछ भी नहीं है। एकांतवासी का ज्ञान दुनिया के ज्ञान से भिन्न है। चिंतन के नियमों में और कर्म के नियमों में बड़ा अंतर है।"

"लेकिन यह देखने भर से ही कि एक नेक आदमी कैसे रहता है, कुछ-न-कुछ शिक्षा मिलती ही है।" महाराजा ने उत्तर दिया, "तुम्हारे मुख के दर्शन करके ही मुझे आनंद प्राप्त हुआ है। मैं और कुछ नहीं चाहता। अपने राज्य में क्या मैं तुम्हारी कोई इच्छा पूर्ण कर सकता हूं? अपने कुटुंबियों को तुम कोई संदेशा देते हो?"

"स्वामी, अब मेरा अपना कुछ भी नहीं है, या इस पृथ्वी पर सबकुछ मेरा ही है। मैं यह भूल गया हूं कि और घरों के बीच कभी मेरा भी एक घर था, या बच्चों के बीच मेरे भी बच्चे थे। जिसका कोई घरबार नहीं, उसीकी सारी दुनिया घर है। जिसने जीवन के बंधनों को काट डाला है, उसीके हिस्से में सच्चा जीवन आया है। जो अबोध है, उसीको पूर्ण शांति है। मेरी केवल यही इच्छा है कि इस पृथ्वी पर मेरा

जीवन पाप-मुक्त रहे।"

"अच्छा विदा ! अपनी उपासना में मेरा स्मरण कर लिया करना।"

"मैं तो परमात्मा का स्मरण करता हूं और इस प्रकार आपका और इस पृथ्वी पर बसनेवाले सबका, जो भगवान के ही अंग हैं, जो उसीको सांस के द्वारा सांस लेते हैं, स्मरण करता हूं।"

महाराजा का बेड़ा जल-धारा में चला गया और फिर कई महीने बीत गये, जबकि उस तपस्वी को पुनः आदमी की बोली सुनने का अवसर मिला।

: ९ :

विराट की प्रसिद्धि फिर सारे देश में फैल गई। दूर-दूर के देहातों और समुद्र-तट की झोंपड़ियों में उस तपस्वी की खबर पहुंची, जिसने अपने घर और अपनी भूमि का त्याग कर दिया था जिससे कि वह चिंतन का जीवन व्यतीत करसके। अब उसे गुणों का चौथा नाम दिया गया, अर्थात् 'एकांतवासी सितारे' के नाम से उसकी ख्याति फैल गई। मदिरों में पुजारी उसके त्याग की प्रशंसा करने लगे। महाराजा उसकी चर्चा अपने नौकर-चाकरों में करने लगे और जब कोई न्यायाधीश अपना फैसला देते तो कहते, "परमात्मा करे, मेरे शब्द उतने ही ठीक हों, जितने विराट के, जो अब केवल भगवान के लिए जीवित रहता है और जो सारे ज्ञान से परिचित है।"

प्रायः ऐसा होता था और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और भी अधिक होने लगा कि लोग अपनी करनी की बुराई अनुभव करके और अपने जीवन को निस्सार समझकर अपना घरबार और संपत्ति त्यागकर विराट की तरह झोंपड़ी बनाने और भगवान की आराधना करने के लिए जंगल में चले जाते थे। संसार में स्वयं उदाहरण उपस्थित करना सबसे उत्तम चीज है। प्रत्येक शुभ कर्म से दूसरों में भला बनने की इच्छा पैदा होती है और वह इच्छा सुप्तावस्था से जागकर तीव्र गति से क़ाम में लग जाती है। जिनकी आंखें खुल गई, उन्हें पता चला कि उनका जीवन कितना निस्सार है। उन्हें वह खून दिखाई देने

लगा, जो उनके हाथों में लगा था और वह पाप भी, जिसके धब्बे उनकी आत्मा पर पड़े थे । वे उठे और एकांत में चले गये। शरीर को कम-से-कम आवश्यकताभर मिल गया तो उसीसे संतुष्ट होकर चिंतन में लीन हो गये। फल इकट्ठे करने के लिए जब वे बाहर निकलते और उन्हें कोई मिल जाता तो वे अभिवादन में एक शब्द भी मुह से न निकालते थे कि कहीं इससे कोई नया संबंध न कायम हो जाय। एक-दूसरे को देखकर वे हार्दिकता के साथ मुस्करा उठते थे और उनकी आत्माएं शांति का अभिवादन कर देती थीं। साधारण जन इस जंगल के बारे में कहने लगे कि वहां तो साधू-संत बसते हैं। कोई भी शिकारी इस भय से वहां नहीं आता था कि हत्या करके वह उस पवित्र स्थान को कहीं कलुषित न कर दे ।

एक दिन सवेरे, जब कि विराट जंगल में टहल रहा था, उसे एक संन्यासी जमीन पर निश्चल पड़ा हुआ मिला। उसे उठाने के लिए जब वह झुका तो उसे मालूम हुआ कि उसका शरीर निर्जीव है। विराट ने उस मृत साधु के नेत्र बंद कर दिये, फिर प्रार्थना के कुछ शब्द कहे। अनंतर उस शव को जंगल से बाहर ले जाने का प्रयत्न करने लगा। उसने इरादा किया था कि उसके लिए चिता बनाकर उसे जला देगा, लेकिन फलों की मामूली खुराक से विराट दुर्बल हो गया था और बोझा उसकी शक्ति से बाहर था। मदद की तलाश में उसने घाट पर से नदी पार की और निकटवर्ती ग्राम की ओर चला।

गांववालों ने जब उस तपस्वी को देखा, जिसे उन्होंने 'एकांतवासी सितारे' का नाम दे रखा था तो अत्यंत विनम्रता-

पूर्वक वे लोग आये और पूछा कि आप क्या चाहते हैं ? पता चला तो वे तुरंत सहायता पहुंचाने के लिए तैयार होने लगे। विराट जहां कहीं गया, स्त्रियों ने उसका अभिवादन किया, बच्चे भौचक्के से खड़े होगये और कुतूहल के साथ देखने लगे कि वह चुपचाप कैसे आगे बढ़ता है। आदमी अपने-अपने घरों से निकलकर अपने उस महान अतिथि को प्रणाम करने और उसका आशीर्वाद लेने के लिए आये। विराट इस अपार जन-समूह के बीच संतोष की एक मुस्कराहट के साथ आगे बढ़ता गया। वह अनुभव करता था कि चूंकि अब वह किसी बंधन में उनके साथ नहीं बंधा है, अत: उसका प्रेम उनके प्रति कितना पवित्र और कितना अधिक है।

हर जगह सबका हार्दिक अभिवादन स्वीकार करता हुआ जब वह अंतिम झोंपड़ी पर पहुंचा तो देखता क्या है कि उसके अंदर एक स्त्री बैठी है और उसकी आंखों में, ज्योंही उसने विराट की ओर देखा, घृणा भर आई। भय से विराट कांप उठा उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि अपने बध किये हुए भाई की कठोर और उसे दोषी ठहरानेवाली जिन आंखों को वह भूल चुका था, उन्हें पुन: देख रहा है। एकांतवास के इन वर्षों में उसकी आत्मा किसीसे बैर करने की अनभ्यस्त होगई थी। उसने अपनेको समझाने का प्रयत्न किया कि वह उसकी निगाह का गलत अर्थ समझा है। लेकिन जब उसने पुन: देखा तो वे आंखें वैसी-की-वैसी घृणा के साथ उसे देख रही थीं। अपनेको संभाल कर विराट उस झोंपड़ी की ओर बढ़ा। स्त्री भीतर चली गई, लेकिन भीतर अंधेरे में से उसकी आंखें जंगली चीते की

देखो, तुमने मेरा क्या बिगाड़ा है !"

आश्चर्य-चकित विराट की बांह पकड़कर स्त्री उसे घर के भीतर ले गई और दरवाजा खोलकर नीची छत के एक अंधेरे कमरे में उसे ले जाकर खड़ा कर दिया, जहां चटाई पर एक निश्चल शरीर पड़ा था। विराट उसे देखने के लिए झुका और फिर कांपकर पीछे हट गया। एक मरा हुआ बालक पड़ा था—बालक जिसकी आंखें उसके अमर भाई की आंखों की भांति उसकी ओर देख रही थीं। दुःख से अधमरी स्त्री उसके पास खड़ी थी। उसने कराहकर कहा, "यह तीसरा, मेरी कोख का आखिरी बालक था और तुमने उसकी और दूसरों की हत्या कर डाली—तुमने, जिसे लोग संत और भगवान का चाकर कहते हैं।"

प्रतिवाद में जब विराट ने मुंह खोलना चाहा तो वह फिर फूट पड़ी, "इस करघे को देखो। इस खाली तिपाई को देखो। इसीपर बैठकर मेरा पति हर रोज कपड़ा बुना करता था। इस देश में उसके बराबर चतुर और कोई जुलाहा नहीं था। दूर-दूर से लोग आकर उससे कपड़े बुनवाते थे और उसकी मेहनत से हमारी ज़िंदगी चलती थी। हमारे दिन चैन से कट रहे थे, क्योंकि पारातिक भला आदमी और मेहनती था। बुरी सोहबत से वह बचता था और पाजी आदमियों से दूर रहता था। उससे मेरे तीन बच्चे हुए। हमने उनकी अच्छी तरह से परवरिश की। उम्मीद थी कि बड़े होकर वे अपने बाप की तरह हो जायगे, भले और नेक। तब एक दिन एक शिकारी आया। भगवान की दया से उसने इस गांव मे पहले कभी पैर नहीं रखा

था। उससे पारातिक को मालूम हुआ कि एक आदमी ने घरबार और सब साज-सामान छोड़ दिया है और दुनियादारी की जिंदगी बिताते हुए भी उसने भगवान के चरणों में अपनेको सौंप दिया है। शिकारी ने बताया कि अपने ही हाथों उसने अपने लिए एक झोंपड़ी बना ली है। उस दिन से पारातिक हम सबसे बच-बचकर रहने लगा। शाम को वह ध्यान में लगा रहता और कभी-कभी ही बोलता। एक रात को मेरी आंख खुली तो देखती क्या हूं कि वह मेरे पास से उठकर जंगल में चला गया है---उस जंगल में, जहां तुम यह सोचकर रहते हो कि परमात्मा का चिंतन कर सको और जिसे सब साधु-संतों का निवास कहते हैं। लेकिन जब पारातिक ने अपने बारे में सोचा, वह हमें भूल गया और उसे यह भी ध्यान न रहा कि उसकी मेहनत पर ही हमारी गुजर-बसर होती थी। हम लोग ग़रीबी के चक्कर में आ गये। बच्चे रोटी के लिए तरसने लगे। एक-एक करके मरते गये और आज तीनों में से आखिरी भी चल बसा। यह सब तुम्हारी करतूत है। तुम्हींने पारातिक को भरमाया। तुम भगवान के पास पहुंच सको, उसीका यह नतीजा है कि मेरी इस देह से पैदा हुए तीन बच्चे मिट्टी में मिल गये। ओ पाखंडी, तुम अपना बचाव कैसे करोगे, जब मैं भगवान के सामने कहूंगी कि मेरे नन्हें बच्चों ने इतना कष्ट पाया, जबकि तुम चिड़ियों का पेट भर रहे थे और दुःख से बचकर दूर रह रहे थे ? तुम कैसे इस बात का प्रायश्चित्त करोगे कि तुम ललचाकर एक ईमानदार आदमी को उसके काम से, जिससे उसकी और उसके मासूम बच्चों की रोजी चलती थी, इस पागलपन के विचार से

भरमा ले गये कि अपने साथी-संगियों के बीच मेहनत की जिंदगी बिताने की बनिस्बत वह एकांत में परमात्मा के ज्यादा पास रहेगा ?"

विराट भयातुर हो उठा और उसके होंट कांपने लगे। बोला, "मैं नहीं जानता था कि मेरी देखा-देखी लोगों को ऐसा करने का प्रोत्साहन मिलेगा। जो मार्ग मैंने चुना, उसपर मैं अकेले ही चलना चाहता था।"

"ओ संत, तुम्हारा ज्ञान कहां है, अगर तुम एक ऐसी बात को भी नहीं समझ पाते, जिसे एक बालक तक जानता है। दुनिया के सारे काम भगवान के काम हैं और कोई भी आदमी अपनी इच्छा से कर्म से नहीं बच सकता और न जिम्मेदारी से ही पीछा छुड़ा सकता है। घमंड से तुम्हारा दिमाग तो आसमान पर पहुंच गया था, जब तुमने सोचा कि तुम अपने कर्मों के मालिक हो सकते हो और तुम दूसरों को सीख दे सकते हो। जो चीज तुम्हारे लिए अमृत थी, मेरेलिए हलाहल होगई और तुमने ही मेरे इन बच्चों को मरवा डाला।"

विराट ने कुछ देर सोचा और फिर उसकी बातों को स्वीकार करके सिर झुका लिया।

"तुम जो कहती हो, ठीक कहती हो और मैं देखता हूं कि संतों के एकांतवास की अपेक्षा कहीं अधिक सचाई दुःख की एक सिसकी में है। मुझे जो सीख मिली है, वह अभागों से मिली है और मुझे जो कुछ दीखा है उसका दर्शन दुखियों और सदा जीवित रहनेवाले मेरे भाई की निगाह ने कराया है। सचमुच में भगवान के सामने उतना विनम्र नहीं हो सका, जितने की

मैंने कल्पना की थी, बल्कि मैं अभिमानी बना। इसका ज्ञान अब मुझे उस दुःख से हुआ है, जिसकी पीड़ा मैं इस समय अनुभव कर रहा हूं। यह ठीक है कि जो निष्क्रिय रहता है वह भी कर्म करता है, जिसके लिए इस पृथ्वी पर वही जिम्मेदार होता है। एकांतवास करनेवाला भी अपने भाइयों के बीच रहता है। मैं तुमसे क्षमा की याचना करता हूं। जंगल से अब मैं इस आशा से लौट आऊंगा कि पारातिक भी मेरी तरह लौटकर तुम्हारी कोख में नये जीवन को जन्म दे।"

विराट एक बार फिर स्त्री के आगे झुका और आगे बढ़ गया। उस जाती काया को स्त्री की आंखें आश्चर्य के साथ देखने लगीं और उसके मन से क्रोध का भाव अनायास बिल्कुल दूर हो गया।

: १० :

विराट ने एक रात और अपनी कुटिया में गुजारी। एक बार फिर उसने सूर्यास्त के बाद आसमान में चमकते तारे देखे। सबेरे के समय उनका धुंधला पड़ जाना भी देखा। चिड़ियों को दावत के लिए एक बार फिर उसने बुलाया और उन्हें प्यार किया। फिर लाठी और पात्र, जिन्हें वह वर्षों पहले अपने साथ लाया था, लेकर नगर की ओर चल दिया।

ज़रा-सी देर में यह खबर चारों ओर फैल गई कि जंगल में रहनेवाला तपस्वी अपनी सूनी कुटिया को छोड़कर फिर शहर आ रहा है और लोग उस दुर्लभ और आश्चर्यजनक दृश्य को देखने के लिए इकट्ठे होने लगे, यद्यपि उनमें से बहुतेरों को यह भय हो रहा था कि भगवान के सामने से इस आदमी का यों चला आना कहीं कोई अनिष्ट न करे! दोनों ओर भक्ति-भाव से खड़े नर-नारियों के बीच से विराट गुजरा और उसने गंभीर मुस्कान से, जो कि प्राय: उसके होटों पर खेलती रहती थी, दर्शकों का अभिवादन करने का प्रयत्न किया, लेकिन पहली बार उसने अनुभव किया कि अब मुस्कराना उसके लिए असंभव है। उसकी आंखें गंभीर बनी रहीं और होठ बंद।

अंत में वह महल में पहुंचा। मंत्रणा का समय बीत चुका था और महाराजा अकेले थे। विराट अंदर गया था। आगंतुक का आलिंगन करने के लिए महाराजा उठ खड़े हुए, लेकिन विराट ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और याचना के रूप में उनकी

पोशाक के छोर का स्पर्श किया।

महाराजा ने कहा, "तुम्हारे होठों से शब्दों के निकलने के पहले ही मैं तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार करता हूं। मेरे लिए यह गौरव की बात है कि मेरे पास एक पावन पुरुष की सेवा और संत की सहायता करने के साधन हैं।"

"मुझे संत मत कहिये।" विराट ने उत्तर दिया, "क्योंकि मैंने सही रास्ते का अनुसरण नहीं किया। अबतक मैं एक चक्र में भटक रहा था और अब मैं फिर एक याचक के रूप में आपके सामने खड़ा हूं। मैं पाप से छुटकारा चाहता था और इसके लिए मैं सब तरह के कर्म से बचा, लेकिन मैं भ्रम में फंस गया था, जिसका जाल आदमियों को फंसाने के लिए सब जगह फैला है।"

"मैं तुम्हारी बात का यकीन नहीं कर सकता।" महाराजा ने कहा, "आदमियों की संगति से तो तुम बचे रहे, फिर उन्हें हानि कैसे पहुंचा सकते थे और जब तुम्हारा जीवन भगवान की सेवा के लिए समर्पित था तो तुम पाप कैसे कर सकते थे!"

"मैंने जान-बूझकर भूल नहीं की। मैं पाप से दूर भाग गया। लेकिन हमारे पैर तो धरती से बंधे हैं और हमारे कर्म सनातन नियमों के बंधन में जकड़े हैं। निष्कर्म स्वयं में कर्म है। अपने उस अमर भाई की आंखों से मैं बच नहीं सका, जिनका हमारे कार्यों पर हमारी इच्छा के विरुद्ध भी प्रभाव पड़ता है, चाहे वे कार्य भले हों या बुरे। लेकिन मैंने तो एक बार नहीं, अनेक बार अपराध किया है, क्योंकि मैं परमात्मा की शरण में

भागा और लोगों की सेवा करने से इंकार कर दिया। मैं तो निकम्मा था, क्योंकि मैंने केवल अपने ही जीवन का पोषण किया, और किसीकी सेवा नहीं की। अब मैं पुनः सेवा करना चाहता हूं।"

"विराट, तुम्हारे शब्द मुझे बड़े अजीब-लगते हैं और मेरी समझ से परे हैं। मुझे तो यह बताओ कि तुम चाहते क्या हो, जिसकी कि मैं पूर्ति करूं ?"

"अपनी इच्छा को अब मैं स्वतंत्र नहीं रखना चाहता। स्वतंत्र आदमी स्वतंत्र नहीं है और जो निष्क्रिय है, वह पाप से नहीं बच पाता। जो सेवा करता है, जो अपनी इच्छा को अपने हाथ नहीं रखता, जो अपनी सारी शक्ति काम में लगाये रखता है और जो बिना सवाल किये कर्म में लीन रहता है, वही स्वतंत्र है। कार्य में जुटे रहना हमारा धर्म है, उसका आदि और उसका अंत, उसका कारण और प्रभाव, परमात्मा के अधीन है। मेरी जो इच्छा है, उससे मुक्त कर दीजिये, क्योंकि सब जगह अपनी इच्छा चलाने से अव्यवस्था पैदा होती है। पूरी तौर पर सेवा करना ही बुद्धिमानी है।"

"तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आ सकती। तुम कहते हो कि मुझे स्वतंत्र कर दो और साथ ही और उसी क्षण कहते हो कि मुझे काम दो। इससे तो यही अर्थ निकलता है कि वही आदमी स्वतंत्र है, जो दूसरों की सेवा करता है, जबकि वह आदमी, जो कि सेवा करता है, स्वतंत्र नहीं है। यह बात मेरी समझ से बाहर है।"

"महाराज, यह ठीक ही है कि आप अपने हृदय में इस बात को नहीं समझ सकते। यदि आप समझ जायं तो फिर आप महाराजा कैसे रह सकते हैं और किस प्रकार दूसरों को आज्ञा दे सकते हैं!"

क्रोध से महाराजा का चेहरा फक पड़ गया। बोले "तो तुम्हारे कहने का मतलब यह है कि परमात्मा की निगाह में दास की अपेक्षा महाराजा छोटी चीज है?"

"परमात्मा की निगाह में कोई किसीसे छोटा नहीं है और न कोई किसीसे बड़ा है। जो सेवा करता है और बिना सवाल किये अपनी इच्छा को समर्पित कर देता है, वही जिम्मेदारी से अपनेको मुक्त कर लेता है और परमात्मा को उसे सौंप देता है। लेकिन जो इच्छा करता है और सोचता है कि अपने ज्ञान से वह विरोध को जीत लेगा, वह लालच के चंगुल में फंस जाता है और पाप करने लगता है।"

महाराजा का चेहरा और भी स्याह हो गया। बोले "तब सब सेवाएं एक-सी हैं और परमात्मा और आदमी की निगाह में छोटी-बड़ी सेवाएं कोई नहीं हैं?"

"यह हो सकता है कि आदमी की निगाह में एक सेवा दूसरी से बड़ी दिखाई दे, लेकिन परमात्मा की निगाह में सब सेवाएं समान हैं।"

महाराजा विराट की ओर देर तक रंजीदा होकर देखते रहे। उनके अभिमान को भारी धक्का लगा। जब उन्होंने उस थके चेहरे और झुर्रियों भरे माथे पर लहराते सफेद बालों को एक

बार फिर देखा तो उन्हें ऐसा लगा कि यह बुड्ढा आदमी सठिया गया है। इस बात की परीक्षा करने के लिए उन्होंने मज़ाक में पूछा, "तुम मेरे महल के कुत्तों का संरक्षक बनना पसंद करोगे?"

विराट ने स्वीकृति में सिर झुकाया और कृतज्ञता-प्रकाशन के लिए सिंहासन का चुम्बन किया।

: ११ :

उस दिन से वह बूढ़ा व्यक्ति, जिसकी देशभर में चार गुणों के लिए ख्याति थी, महल के निकट कुत्तेघर के कुत्तों का संरक्षक होकर नौकर-चाकरों की कोठरियों में रहने लगा ।

उसके बेटे उसके कारण लज्जित थे। जब उन्हें उसके ठिकाने के पास से होकर निकलना होता तो वे लंबा चक्कर काटकर जाते, क्योंकि वे उसका सामना करने से बचना चाहते थे और दूसरों के आगे यह स्वीकार नही करना चाहते थे कि वह उनका पिता है ।

पुजारो उसे निकम्मा समझकर विमुख हो गये ।

विराट वहां एक नौकर के रूप में बसने के लिए आया था। कुत्तों की डोरी पकड़कर उन्हें घुमाने ले जाता। कुछ दिन तक सामान्य जन उस बुड्ढे को, जो कभी महाराजा का खास आदमी रहा था, देखकर खड़े हो जाते थे और टकटकी लगाकर उसकी ओर देखते थे, लेकिन विराट इन दर्शकों की परवा नहीं करता था। इसलिए थोड़े समय में वे भी उदासीन हो गये और विराट के बारे में उन्होंने सोचना ही छोड़ दिया ।

विराट ईमानदारी के साथ सवेरे से लेकर शाम तक काम मे जुटा रहता। कुत्तों के पट्टों को धोता, लबादों को साफ करता, उनके लिए भोजन लाता, उनके आराम करने के लिए जगह ठीक करता, और उनका पेशाब और टट्टी साफ करता ।

कुछ ही दिनों में महल के और लोगों की अपेक्षा कुत्ते उसे

कहीं अधिक प्यार करने लगे। इससे उसके हृदय को बड़ा आनंद प्राप्त हुआ। उसका वृद्ध और झुर्रियों से भरा मुंह, जो बहुत कम बोलता था, कुत्तों को प्रसन्न देखकर मुस्करा उठता था।

कई वर्ष इसी प्रकार आनंदपूर्वक बीते। उनमें कोई विशेष घटना नहीं हुई। हां, इस बीच महाराजा की मृत्यु होगई। दूसरा नया राजा गद्दी पर बैठा, जो विराट को चीन्हता तक नहीं था और जिसने एक बार विराट के एक छड़ी जमा दी, क्योंकि जब वह जा रहा था, एक कुत्ता उसे देखकर भौंक उठा था। एक दिन वह भी आया जबकि विराट के सब साथी-संगी उसे भूल गये।

जब विराट की जीवन-यात्रा समाप्त हुई और उसका शव नौकर-चाकरों की श्मशान-भूमि में जलाया गया तो उसकी याद करनेवाला उस समय कोई भी नहीं था। यह वह आदमी था, जिसकी कीर्ति कभी सारे देश में व्याप्त थी और जिसकी चार गुणों के लिए सर्वत्र प्रशंसा होती थी! उसके बेटे अलग रहे और कोई भी पुजारी अन्त्येष्ठि-संस्कार कराने नहीं आया। दो दिन और दो रात कुत्ते बेशक भौंके, लेकिन वे भी अपने स्वामी को, उस विराट को, भूल गये, जिसके नाम का विजेताओं के इतिहासों में कोई उल्लेख नही है और न संतों के ग्रंथों में ही कहीं एक शब्द उसके बारे में देखने में आता है।

हमारा उपन्यास-साहित्य

१. तट के बंधन
२. देवदासी
३. कित्तूर की रानी
४. नवीन यात्रा
५. प्रभु पधारे
६. विराट

डेढ़ रुपया.